प्रकाशक—
श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रंथमाला,
२।३८ भदैनी, काशी

प्रथम संस्करण १०००
श्रावण पूर्णिमा (रक्षाबंधन) वी० वि० सं०२४७६
मूल्य ३)

मुद्रक—
एन्० जी० ललित,
ललित प्रेस,
के० ६।७ पत्थरगली, बनारस

प्रकाशक—
श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रंथमाला,
२।३८ भदैनी, काशी

प्रथम संस्करण १०००
श्रावण पूर्णिमा (रक्षाबंधन) वी० नि० सं०२४७६
मूल्य ३)

मुद्रक—
एन० जी० ललित,
ललित प्रेस,
के० ६।७ पत्थरगली, बनारस

प्रकाशक—
श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रंथमाला,
२।३८ भदैनी, काशी

प्रथम संस्करण १०००
श्रावण पूर्णिमा (रक्षाबंधन) वी० वि० सं०२४७६
मूल्य ३)

मुद्रक—
एन० जी० लाल
ललित प्रेस
क० ६।७ पथगली

* श्रद्धांजलि

तवि वयि केसव वड्ढु तुहुं, अह वि तरुण हियडेण।
तुज्झ चित्तु धीरिम जलहि, णत्थि जहिं कित्तिफेण॥

हे आचार्यवर्य केशवप्रसादजी, साधना और अवस्था में आप वृद्ध हैं, फिर भी हृदय से तरुण हैं। आप का चित्त धैर्य का समुद्र है, उसमें कीर्ति का फेन नहीं है॥ १॥

गुणहिं न सम्पइ कित्ति पर, सुनियइ लोय-पसिद्ध।
कित्ति वि केसव ! तुज्झ गुण, किम तज्जहिं णिनिद्ध॥ २॥

सुनते हैं कि लोक में गुणों से सम्पत्ति नहीं, कीर्ति मिलती है, पर हे आचार्यवर्य केशवप्रसादजी ! आप के गुण उस कीर्ति को भी क्यों तरज देते हैं॥ २॥

भासावइ ! पडिछाहि तुहुं, जेहु नाउ गुण तेहु।
आहिरिडोहु रसि तुहुं, धरहि असड्ढुलु नेहु॥ ३॥

हे भाषापति ! आप यथानाम तथागुण हैं क्योंकि आप आभीरीभाषा [अपभ्रंश] के लिए असाधारण स्नेह रखते हैं। केशव [कृष्ण] भी आभीरीस्त्रियों [गोपियों] के लिए असाधारण स्नेह रखते थे॥ ३॥

रइवर ! अप्पइ सभलु तुहु, विसया जासु न लग्ग।
करणेहिं सेवइ तिवग्ग, कडिरेवि करे मण वग्ग॥ ४॥

हे रविवर ! आप की आत्मा सरल है, क्योंकि उसको विषय नहीं लगते। वह, मन की लगाम हाथ में लेकर इन्द्रियों से, त्रिवर्ग [धर्म अर्थ काम] का सेवन करती है॥ ४॥

अम्हहं एक्कइ आस, समरसि नंदउ वरिस सय।
करइ सुमग्ग-पयास, अग्गिउ गुरुवर सद्ध तउ॥ ५॥

हमारी एक ही आशा है कि आप सौ वर्ष समरस में आनंद करते रहें। हे गुरुवर ! आगे भी आप की श्रद्धा हमारा मार्ग प्रशस्त करे॥ ५॥

---

* हिन्दीविभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी द्वारा आयोजन आचार्य जी के अभिनंदन समारोह के अवसर पर पठित।

प्रकाशक के दो शब्द

भारत की प्राचीन भाषाओं में अपभ्रंश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह संस्कृत प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी है। इसका विशाल साहित्य अभी तक अप्रकाशित दशा में पड़ा हुआ है। हमें इस बात की प्रसन्नता है कि अब भारतीयों और विदेशी विद्वानों का इसके सम्पादन, चिन्तन, मनन और अनुसंधान की ओर विशेष ध्यान गया है।

सर्व प्रथम नागपुर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा० हीरालाल जी ने इस ओर विशेष ध्यान दिया था। उन्होंने बड़े परिश्रम और मनोयोग पूर्वक सावयधम्म दोहा, पाहुड दोहा, णायकुमार चरिउ, जसहर चरिउ और करकंड चरिउ का अनुपम सम्पादन और प्रकाशन कर इसको भी बढ़ाया। और भी ऐसे महानुभाव हैं जिन्होंने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उदाहरणार्थ डा० पी० एल. वैद्य अध्यक्ष संस्कृत विभाग हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस ने महापुराण और सिद्धहेमशब्दानुशासन का सम्पादन किया है। श्रीशंकरपाण्डुरंग एम० ए० बम्बई ने भविसयत्तकहा का, और प्रोफेसर गुणे ने अपभ्रंश काव्यत्रयी का सम्पादन किया है। साथ ही इस विषय पर कुछ स्वतन्त्र पुस्तकें भी लिखी गई हैं उदाहरणार्थ—डा० वासुदेव तगारे ने हिस्टोरिकल ग्रामर आफ् अपभ्रंश, श्री जगन्नाथ राय जी शर्मा प्रोफेसर पटना विश्वविद्यालयने अपभ्रंशदर्पण, आचार्य चेचरदास जी दोशी ने प्राकृत व्याकरण नामक पुस्तकें लिखी हैं। इससे यद्यपि इस भाषा के पठन पाठन की ओर छात्रों और विद्यासंस्थाओं का ध्यान गया है फिर भी अभी इसके प्रचार और प्रकाश में लाने की महती आवश्यकता है।

यही सोचकर साहित्याचार्य, साहित्यरत्न चि. देवेन्द्रकुमार जी एम० ए० ने प्रस्तुत पुस्तक लिखी है। ये हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और दूसरी लोक भाषाओं के गहरे अभ्यासी हैं। इनकी भाषा मंजी हुई और प्राजल है। आप तर्कशील और विचारक हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उनकी इस योग्यता के पद-पद पर दर्शन होते हैं। उन्होंने इसमें न केवल अपभ्रंश भाषा का व्याकरण निबद्ध किया है अपितु हिन्दी का विकास उसके आधार से कैसे हुआ है यह भी भली भांति दिखाने का उपक्रम किया है।

यह तो सर्वविदित ही है कि काशी विश्वविद्यालय के हिन्दीविभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष आचार्य केशवप्रसाद जी मिश्र का पौर्वात्य और पाश्चात्य भाषाविज्ञान का गहरा अध्ययन है। इस समय उनकी जोड़ का इस विषय का, हिन्दीप्रदेश में दूसरा विद्वान् उपलब्ध होना दुर्लभ है। चि. देवेन्द्रकुमार जी उनके अन्यतम पट्ट शिष्य हैं, इस लिये प्रस्तुत पुस्तक की कीमत और भी अधिक बढ़ जाती है। इसके निर्माण में उनके अनुभव से भी पूरा-पूरा लाभ उठाया गया है।

ऐसी उपयोगी पुस्तक को प्रकाश में लाना लाभप्रद समझ कर ही हम श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला की ओर से इसे प्रकाशित कर रहे हैं। हमारा विश्वास है कि विद्वत्समाज और शिक्षासंस्थाओं में इसका समुचित आदर होगा।

वीरशासन जयन्ती श्रावण कृष्णा प्रतिपदा वीर सं० २४७६	फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री संयुक्त मंत्री श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैनग्रन्थमाला बनारस

निवेदन

हिन्दी प्रदेश में अपभ्रंश भाषा और साहित्य का अध्ययन [illegible] नगण्य ही है। हिन्दी के इतिहास लेखकों ने अपभ्रंश युग का, गम्भीर [illegible] दूर, उसका भी विचार नहीं किया। उनकी इस उपेक्षा से हिन्दी भा[illegible] और साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन में विभिन्न भ्रांतियाँ हुई हैं, इ[illegible] अपभ्रंश साहित्य का जो प्रकाशन हुआ है उसमें अपभ्रंश भाषा [illegible] व्याकरण और विज्ञान की विस्तृत चर्चा है, पर अपभ्रंश साहित्य के शरीर और आत्मा को परखने की चेष्टा किसी ने नहीं की। अब यह बात निर्विवाद रूप से मान ली गई है कि अपभ्रंश भाषा हिन्दी की साक्षात् जननी है, संस्कृत तो परम्परा से उसकी जननी है, अपभ्रंश साहित्य की विविध शैलियों और विचारों का भी हिन्दीसाहित्य से सीधा संबंध है, यही बात, अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं के विषय में भी सत्य है। प्रस्तुत पुस्तक, मूलतः तीन भागों में विभाजित है, पहले भाग में अपभ्रंश के ऐतिहासिक विकास और उससे सम्बद्ध अन्य विषयों की चर्चा है दूसरे में उसके व्याकरण का विवेचन है; और तीसरे में अपभ्रंश काव्य का कालक्रम से चयन कर दिया गया है, पाठकों की सुविधा के लिए परिशिष्ट में उद्धृत अंशों का हिन्दी अनुवाद भी दे दिया है। इनके अति-रिक्त, अपभ्रंश और हिन्दी की भी कुछ चलती तुलना है।

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में मैंने जिन कृतिकारों की पुस्तकों से सहायता ली है उनके प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। स्थानाभाव से उनका यहाँ उल्लेख नहीं [illegible]

दी, इतना ही नहीं अपने कई प्रसंगों का अर्थ लगाने में अपना
मूल्यवान् समय भी दिया, अतः मैं इस सौजन्य से मैं केवल आभार मानकर
नहीं उबर सकता। श्रद्धेय आचार्य विश्वनाथप्रसाद जी ने कार्यव्यस्त
रहते हुए भी यथाशीघ्र प्राक्कथन लिखने की कृपा की और श्रद्धेय डाक्टर
हजारीप्रसाद जी द्विवेदी अध्यक्ष हिन्दी विभाग तथा डाक्टर जगन्नाथप्रसाद
जी शर्मा प्राध्यापक काशी विश्वविद्यालय ने अपनी बहुमूल्य और उदार
सम्मति देकर मेरा जो उत्साह बढ़ाया है उसके लिए उन्हें मैं क्या कहूं,
वे मेरे गुरुजन ही हैं। उनके आशीर्वाद का तो मैं अधिकारी ही हूं।
श्रीमान् प्रो० दलसुख जी मालवणिया का भी मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं, आपने
न केवल पार्श्वनाथविद्याश्रम की लाइब्रेरी का मुझे यथेष्ट उपयोग करने दिया
प्रत्युत बहुमूल्य पुस्तकें तत्काल मंगवा दीं, भाई गुलाबचंद जी चौधरी
एम. ए. व्याकरणाचार्य, रिसर्च स्कालर और पं० अमृतलाल जी दर्शनाचार्य
ने इस काम में मेरी जो सहायता की है, उसके लिए मैं उनका आभारी
हूं। ललित प्रेस के व्यवस्थापक श्री एन्. जी. ललित का भी आभार
मानना प्रसंगप्राप्त है क्योंकि उन्होंने सब काम समय पर पूरा किया।
शीघ्रता और अनुभवहीनता के कारण जो भूलें रह गई हैं, उनके लिए
मैं क्षमाप्रार्थी हूं। अंत में श्रद्धेय आचार्य जगन्नाथप्रसाद जी के शब्दों की
छाया में मुझे विश्वास है कि यह लघु प्रकाश अपभ्रंश भाषा और काव्य
के दुरूहपथ को आलोकित करने में समर्थ होगा।

देवेन्द्रकुमार

से इसके भी तीन रूप होते हैं—रासो (व्रज), रासा (पंजाबी) और रास (अवधी)। हिंदी के 'रासो' शब्द को इसी रासक से व्युत्पन्न समझना चाहिए—रसायण, रहस्य, राजसूय, राजयश आदि से नहीं। इसका विस्तृत विवेचन मैं बहुत पहले ही कर चुका हूँ, यहाँ उसका संग्रह-संकलन अनावश्यक है। 'रासो-रासा' पश्चिमी क्षेत्र के हैं और 'रास' पूर्वी क्षेत्र का। तीनों को स्थूल रूप में देशों के नाम से कहें तो ब्रज या शूरसेन, पंचनद और कोसल या अवध से संबद्ध करना होगा। 'व्रज' या शौरसेनी या पश्चिमी अपभ्रंश के कई नाम हैं। 'नागर' तो उसका नाम है ही, एक नाम 'पिंगल' भी है। राजस्थानी या डिंगल से पिंगल की भिन्नता राजस्थान में क्या, हिंदी-साहित्य के इतिहासों तक में प्रसिद्ध है। पिंगल ब्रजभाषा या सर्वसामान्य काव्यभाषा मानी जाती है और डिंगल प्रांतीय भाषा या मातृभाषा। 'पिंगल' की रचना में वहाँ के कवियों ने प्राचीन काल से नियम बना रखा है कि प्रत्येक पद्य में 'वैण-सगाई' नामक अलंकार-योजना अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। यदि डिंगल की रचना में 'वैण-सगाई' प्रत्येक पद्य में न मिले तो समझ लेना चाहिए कि पाठ ठीक नहीं। 'वैण-सगाई' क्या है? इसे राजस्थान के प्रसिद्ध काव्यमर्मज्ञ स्वर्गीय अर्जुनदास जी केडिया के शब्दों में लीजिए—"राजपूताने के चारण कवियों में पिंगल की भाँति 'डिंगल' छंद-शास्त्र का भी प्रचार है। पद्य के प्रत्येक चरण का प्रथम शब्द जिस अक्षर से आरंभ होता हो, उसी अक्षर से आरंभ होनेवाला कम से कम एक और शब्द उसी चरण में रखने

का नियम इसमें अनिवार्य है। इससे अनुप्रास का चमत्कार होता है। इसका नाम 'वैण-सगाई' प्रसिद्ध है।"

यहीं से एक उदाहरण लीजिए—

> आवै वस्तु अनेक, हद नाखी कोडै हुवै।
> असल न आवै एक, कोड करे 'किसनिया'॥

चारण कवियों को यह वैण-सगाई इतनी प्रिय थी कि परवर्ती काल में कुछ ने अपनी पिंगल की रचना में भी बहुधा इस नियम के पालन का प्रयास किया है। सूर्यमल्ल जी ने प्रायः ऐसा किया है। अस्तु, जहाँ अनिवार्य रूप से वैण-सगाई मिले वह डिंगल की रचना होगी। ऐसा हो सकता है कि कोई रचना 'वैण-सगाई' से पूर्णतया अलंकृत हो फिर भी वह डिंगल की रचना न हो, पिंगल की रचना हो। पर जिसमें इसका अनिवार्य पालन न हो, कम से कम वह रचना 'डिंगल' की तो न होगी। पर इधर जनपद-भाषा का आंदोलन प्रबल होने से और अभेद से भेद की ओर जाने से 'अलौकिक' की दूषित प्रवृत्ति जगी। परिणाम यह हुआ कि राजस्थान के विद्वान् तक 'रासो-ग्रंथों' को डिंगल की रचना मानने और कहने लगे, यद्यपि इनमें डिंगल की उस अनिवार्य अलंकार-योजना का विधान नहीं है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है 'पिंगल' [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

भाषा मानी गयी हैं। 'प्राकृत पैंगलम्' में उसके छंदों का सोदाहरण विवेचन है। इसी से छंद-शास्त्र का नाम देशी भाषा में 'पिंगल' पड़ गया। छंद-शास्त्र कठिन है, उसमें बड़ा विस्तार—प्रस्तार, मेरु-मर्कटी, नष्ट उद्दिष्ट का बखेड़ा होता है। अतः जो किसी कार्य के करने में बखेड़ा, विस्तार, उलझाव आदि उत्पन्न करने लगता है उसके लिए हिंदी का मुहावरा 'पिंगल पढ़ना' काम में लाया जाता है। ये 'पिंगल' शेषनाग के अवतार माने जाते हैं अतः 'पिंगल' भाषा का दूसरा नाम 'नाग भाषा' है, जिसकी चर्चा भिखारीदास ने अपने 'काव्यनिर्णय' में की है। 'नाग भाषा' का संबंध 'नाग जाति' से है या नहीं इसका विस्तृत विवेचन पूरे प्रबंध का मैदान चाहता है। अतः उसे भविष्य के लिए छोड़ देना पड़ता है।

ये सब नाम अर्थात् नागर, पिंगल, नाग अपभ्रंश भाषा के पर्यायवाची हैं। 'नागर' से हिंदी भाषा का नाम 'नागरी' पड़ा। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ये पश्चिमी अपभ्रंश के नाम हैं। 'नागर' शब्द को 'नागर' (गुजरात) जाति से जोड़ा जाय या उसका अर्थ परिष्कृत या संस्कृत किया जाय, यह पृथक् समस्या है। 'नागर' जाति से जोड़ने पर भी उसकी एक विशेषता की ओर ध्यान देना आवश्यक है। वह यह कि इसमें परिष्कार और साथ ही संस्कृत का मेल अधिक है। प्राकृत वैयाकरणों ने शौरसेनी प्राकृत के लिए 'प्रकृतिः संस्कृतम्' का जो उल्लेख किया है उसका चाहे लोग जो अर्थ लगाएँ यह तो स्पष्ट ही है कि साहित्यारूढ़ होने पर शौरसेनी प्राकृत संस्कृत शब्दों के आगमन और [illegible] यही विशेषता शौरसेनी अपभ्रंश [illegible]

नागर अपभ्रंश की है। इसके विपरीत अर्धमागधी प्राकृत और अर्ध-मागधी अपभ्रंश में प्राकृत—जन-प्रचलित—शब्दों की, ठेठ शब्दों की प्रवृत्ति अधिक थी। यह परंपरा पूर्णतया सुरक्षित है। जैनों के अर्धमागधी अपभ्रंश या अवधी भाषा में ठेठ का महत्त्व अधिक है। जायसी आदि हिंदी कवियों ने अवधी का जो रूप लिया है उसका कारण केवल यही नहीं कि उन्होंने जनता की भाषा ज्यों की त्यों ले ली, प्रत्युत यह भी है कि उसकी प्रकृति प्राकृत या जन-प्रचलित या तद्भव या ठेठ शब्दों की ही है। तुलसीदासजी ने संस्कृत का, शौरसेनी या ब्रज का मेल करके उसे सर्वसामान्य ब्रजभाषा की प्रतिद्वंद्विता में खड़ा किया। फल यह हुआ कि आगे की भाषा ब्रज और अवधी से मिलकर एक मिली-जुली भाषा हो गई जिस खिचड़ी भाषा का व्यवहार हिंदी के रीतिकाल या शृंगारकाल के अधिकतर कवियों ने किया।

पश्चिमी अपभ्रंश तो नागर हो गया, पर पूर्वी अपभ्रंश ग्राम्य ही बना रहा, उसकी प्रकृति ही वैसी थी। विद्यापति ठाकुर ने कीर्तिलता में जिस प्रकार की भाषा का व्यवहार किया है उसमें पश्चिमी प्रकृति चाहे [illegible] पूर्वी अपभ्रंश [illegible] प्रवृत्ति [illegible] मिलती है। अपभ्रंश [illegible] विवेचन करने का [illegible]

अपभ्रंश में सर्वसामान्य प्रवृत्तियाँ ही अधिक दिखाई देती हैं, पर उत्तरकालिक अपभ्रंश में प्रांतीय रूपों का अधिकाधिक ग्रहण होने लगा। अर्थात् प्रांतीय प्रवृत्ति शुरू होने पर यह देशी भाषाओं के अधिक निकट आ गया। विद्यापति ने अपनी 'कीर्तिलता' में जिस भाषा का व्यवहार किया है वह प्रांतीय या पूर्वी रूप लिए हुए है। कुछ विद्वान् अपभ्रंश के इस उत्तरकालिक रूप को 'अवहट्ट' कहने के पक्ष में हैं अर्थात् उनके मत से अपभ्रंश और देशी भाषा के बीच एक सोपान 'अवहट्ट' का है। इसमें संदेह नहीं कि देशी भाषाओं का उदय होने के पूर्व अपभ्रंश का ऐसा रूप अवश्य आया होगा जो उनके निकट था, अतः पुराने या पूर्वकालिक अपभ्रंश को अपभ्रंश और उत्तरकालिक को 'अवहट्ट' कहा जाय तो कोई हानि नहीं। पूर्वकालिक अपभ्रंश के लिए यह नाम कहीं प्रयुक्त मिलता भी नहीं है पर उत्तरकालिक अपभ्रंश के लिए यह नाम आया है। 'प्राकृतपैंगलम्' की टीका में इस नाम का व्यवहार बार-बार हुआ है। यह 'अवहट्ट' (तत्सम 'अपभ्रष्ट') देशी भाषा के निकट है या यों कहिए कि देशी भाषा की मिलावट से साहित्यारूढ़ पारंपरिक अपभ्रंश ही 'अवहट्ट' है। विद्यापति ने 'अवहट्ट' को सीधी देशी भाषा के निकट लाने का प्रयास किया है। उन्होंने जो बतलाया है कि

सक्कअ बानी बहुअ न भावइ,
पाउअ रस को मम्म न जानइ।

के कारण लेखक को जैन अपभ्रंश के अनेक ग्रंथों के आलोडन मनन चिंतन का अवसर सहज प्राप्त रहा है। इसी से उसने प्रामाणिक और सुसंगत विचार रखे हैं। पुस्तक अच्छी है और जिज्ञासुओं को अपभ्रंश समझने में पर्याप्त सहायता करेगी ऐसा विश्वास है।

वाणी-वितान
ब्रह्मनाल, काशी।
गुरु पूर्णिमा, २००७

विश्वनाथप्रसाद मिश्र,
(प्राध्यापक काशी विश्वविद्यालय)

विषय सूची

क्रमाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
१७	स्वरविकार	३८
१८	व्यञ्जन विकार	३९
१९	विशेष परिवर्तन	४०
२०	संयुक्त व्यञ्जन	४१
२१	ध्वनिधर्म [आ० वर्णागम, मध्य—वर्णागम, स्वरभक्ति, [अपनिहिति वर्ण-विपर्यय, वर्णविकार, परसावर्ण्यभाव, पूर्वसावर्ण्य भाव, पूर्वपरसावर्ण्यभाव, आदिवर्ण लोप, मध्यवर्ण लोप, अन्तःस्वरलोप, अक्षरलोप,]	४२
२२	विशेष प्रवृत्ति	४६
२२	**रूपविचार**	४७
	पुलिंग देव शब्द के रूप, पुलिंग गिरि शब्द के रूप	
२४	नपुंसक लिंग	४८
	कमल शब्द के रूप,	
२५	स्त्रीलिंग—मुग्धा शब्द के रूप,	५३
२६	पुलिंग अकारान्त के विभक्ति चिह्न	५५
२७	पुलिंग इकारान्त उकारान्त शब्दों के विभक्ति चिह्न	
२८	नपुंसकलिंग के विभक्ति चिह्न	५६
२९	स्त्रीलिंग के विभक्ति चिह्न	

क्रमाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
७२	पहला भाग	१४७
७३	आचार्य हेमचंद्र	१५३
७४	दूसरा भाग	१५५
	परिशिष्ट	
७५	(महाकवि कालिदास)	१७०
७६	सरहपाद	१७७
७७	आ० देवसेन	१७१
७८	आ० पुष्पदंत, [सरस्वती वंदना, नर और नारी नागकुमार और दुर्वचन का युद्ध, यशोधर राजा, मानव शरीर, कवि की प्रस्तावना, उद्यान का वर्णन, संसार की नश्वरता, दूत का निवेदन, भरत और बाहुबलि का युद्ध, पश्चाताप, श्रोत्रिय कौन, नीति कथन, युद्ध वार्तालाप, हनुमान रावण-संवाद, राम की प्रतिज्ञा, सीता का विलाप, परतंत्र जीवन, कृष्ण का बचपन, पोयणु नगर का वर्णन, आत्मपरिचय]।	१७८
७९	भविसयत्तकहा	१९४
८०	मुनि रामसिंह	१९६
८१	मुनि कनकामर (करकंड का अभिमान) गंगा का दृश्य, आक्रमण का प्रतिरोध युद्ध वर्णन]	१९६
८२	आचार्य हेमचंद	२०१

किया जाता था, महाभारत युद्ध के पूर्व वेदव्यास ने उसका विभाजन किया, डाक्टर सुनीत कुमार चटर्जी के अनुसार १००० वर्ष ईसा पूर्व वेद पूर्णता को पहुँच गए ।

आर्यों की भाषा बदल रही थी, निरन्तर प्रगति, अनार्यों द्वारा आर्यभाषा का अभ्यास, 'आर्य अनार्य' मिश्रण और बोलचाल की भाषा का स्वाभाविक विकास, इस परिवर्तन के मुख्य कारण थे। भगवान् महावीर और बुद्ध के समय आर्यों का विस्तार विदेह तक हो चुका था, १००० से ६०० वर्ष ईसा पूर्व का यह समय, ब्राह्मण रचनाकाल कहा जाता है, इसमें आर्य भाषा में अनेक परिवर्तन हुए। वैदिक भाषा लिखितसाहित्य का माध्यम बन जाने से रूढ़ हो रही थी, और बोलचाल की भाषा के इस समय तीन रूप थे (१) उदीच्य (Northwestern) (२) मध्यदेशी (Mid land) (३) और प्राच्य (Eastern) इस प्रकार अफगानिस्तान से बंगाल तक आर्यभाषा का प्रचार क्षेत्र समझना चाहिए, उदीच्य भाषा के स्वरूप का प्रतिनिधित्व आधुनिक उत्तर पश्चिम सीमान्त और उत्तरी पंजाब की भाषाएं करती हैं। कौशीतिकी ब्राह्मण में अंकित है कि लोग उदीच्यों के पास भाषा सीखने जाते थे, प्राच्य (पूर्व) में आर्यों की अपनी भाषा थी, आर्यों के संयुक्त वर्ण और अन्य ध्वनियां उनके लिए क्लिष्ट जान पड़ती थीं, मध्यदेश की भाषा इन दोनों के बीच में थी। [illegible] में एक ब्राह्मण [illegible] का उल्लेख है कि [illegible] प्रकार असुर लोग अरय का अलय उच्चारण करके पराजित हुए [ते असुरा हेलय हेलय इति कुर्वन्त पराबभूवुः] प्राच्य प्राकृत में [illegible] लोप [illegible] र का ल [illegible] के परवर्ती [illegible] के [illegible] करने का प्रचलन था जैसे [कृत [illegible] कट, अर्थ अट्ठ] आर्यों के अभाव के कारण अनार्य भाषाएं आर्यभाषा

के आसपास केन्द्रित होने लगीं. महावीर और बुद्ध के समय उदीच्य की भाषा वैदिक साहित्यिक भाषा के अतिनिकट थी जब कि प्राच्य की भाषा में काफी अन्तर पड़ गया था. छन्दस् भाषा (वैदिक भाषा) का अध्ययन ब्राह्मणों द्वारा साहित्यिकभाषा के रूप में जारी था। प्राच्य और उदीच्य के मेल से मध्यदेशीय भाषा का उदय हुआ, जो सूत्रार्थों की व्याख्या के लिए स्वीकृत गद्य की भाषा थी, प्राच्य भाषाभाषी के लिए छन्दस् और ब्राह्मणगद्य की भाषा कठिन जान पड़ती थी, और इसी प्रकार उदीच्य लोग प्राच्य की भाषा को क्लिष्ट समझते थे. इस असुविधा को दूर करने के लिए—भगवान बुद्ध के दो शिष्यों ने उनके उपदेशों का अनुवाद वैदिक भाषा में करने की अनुमति मांगी पर उन्होंने उसकी स्वीकृति नहीं दी. महावीर और बुद्ध ने बोल चाल की भाषा में ही अपने उपदेश किए। इससे बोलचाल की भाषाओं की खूब उन्नति हुई, और वे भी साहित्य प्रणयन के लिए स्वीकृत हुईं. एक प्रकार से छंदस् और संस्कृत के विरुद्ध आन्दोलन चल पड़ा क्योंकि वे वैदिक भाषा पर अवलम्बित थीं. इस प्रकार विचारसंघर्ष ने भाषा संघर्ष को जन्म दिया. दूसरे उपनिषदें भी उच्च और शिक्षित वर्ग के लोगों के लिए थीं। ब्राह्मणों की भाषा पर यह प्रभाव बड़ी तेज़ी से पड़ रहा था. ठीक इसी समय पाणिनि नाम के वैयाकरण शालातुर में उत्पन्न हुए. इस प्रदेश में छन्दस् [illegible]

उनके दो सौ वर्ष पूर्व इसका उद्गम हो चुका था। यह भाषा सिंध सभ्यता और संस्कृति की बहुत बड़ी भाषा सिद्ध हुई, आरंभ में जैन और बौद्धों ने इसका विरोध किया, पर बाद में उन्होंने भी इसे अपना लिया, आर्य लोग इसे उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान मध्य एशिया तिब्बत, और चीन, वहाँ से कोरिया और जापान तक, तथा दक्खिन में लंका बर्मा और हिन्द चीन लेगए। संस्कृत वस्तुतः किसी प्रदेश की भाषा नहीं थी केवल ई०पू० सदियों में पंजाब और मध्यदेश की विभाषाओं ने उसे नामरूप दिया था, फिर भी यह पूर्ण जीवित भाषा रही, संस्कृत समन्वय की भाषा थी उसके माध्यम से अनार्य आख्यान कथाएं और तत्त्वज्ञान को आर्यरंग में रंग दिया गया। समन्वय की आकांक्षा अनार्यों की बहुभाषिता और आर्यों की राजनैतिक प्रबलता और दोनों की ऊंची बौद्धिक उड़ानों ने उसे उत्तरापथ की भाषा बना दिया। आर्य सभ्यता का दक्खिन में प्रवेश अगस्त्य ऋषि ने कराया। संस्कृत ने एक प्रकार से मध्यम मार्ग ग्रहण किया, प्राचीन रूपों की सुरक्षा और मध्य आर्य भाषाओं के शब्दों और रूपों को लेकर यह आगे बढ़ी, तीन हजार वर्षों तक यह सभ्य संसार के आदान प्रदान और उच्च तत्त्वचिंतन का माध्यम बनी रही, एक समय था जब वैदिक बौद्ध और जैन तत्त्व चिंतन का एकमात्र माध्यम संस्कृत थी। ध्वनि और शब्दरूपों का उसने बड़ा ध्यान रखा, व्यवहार में पुराने वैदिक शब्द छोड़ दिए गए, पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी में संस्कृत के अतिरिक्त अनेक विभाषाओं का उल्लेख किया* है, प्राचा से उनका अभिप्राय पूर्व और उदीच्या से उत्तर था। उन्होंने सामान्यभाषा के नियम लिखकर विशेष भाषाओं के भी नियमों का जगह-जगह उल्लेख

* "जराया जरसन्यतरस्याम् (भाषाया)। भाषाया सदवसश्रुवः"

किया है, संस्कृत शब्द का प्रयोग उन्होंने पकाने के अर्थ में किया है, भाषा के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग उन्होंने नहीं किया. छंदस् से उनका अभिप्राय वैदिक भाषा से था, अपनी भाषा को उन्होंने भाषा कहा है. पाणिनि द्वारा भाषा का आदर्श स्थापित कर देने पर भी उसका स्वरूप स्थिर नहीं रह सका और स्वयं पाणिनि जैसे संसार के सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण भी भाषा का स्वरूप नहीं बाँध सके उन्हें भी 'पृषोदरादिषु यथोपदिष्टम्' कहकर आकृति-गण का सहारा लेना पड़ा। ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि ब्राह्मण-ग्रन्थ में मुहावरों और क्रिया की बहुलता थी। आगे कृदन्त रूपों का प्रयोग होने लगा, इसके अतिरिक्त भाषा-लेखक जब संस्कृत में लिखते तो भाषापन भी उसमें पहुँचा देते, जैन संस्कृत के अध्ययन से इसपर काफी प्रकाश पड़ता है. यह तो हुई प्राचीन आर्य भाषा की चर्चा, जिसमें कि वैदिक और लौकिक संस्कृत की गणना की जाती है।

मध्य आर्यभाषा में पाली प्राकृत और अपभ्रंश की गणना होती है. इसके तीन भाग किए जा सकते हैं. आदि—मध्यकाल में पाली और अशोक की प्राकृत, मध्य में जैन प्राकृतें महाराष्ट्री और साहित्यिक प्राकृतें और अंतिमकाल में अपभ्रंश। बुद्ध के कुछ समय पूर्व मध्य आर्य भाषा की स्थिति स्थापित हो चुकी थी उदीच्य की भाषा से इनमें सबसे पहले ध्वनिसम्बन्धी भेद ही लक्षित होता है र को ल मूर्धन्यभाव और सावर्ण्यभाव [illegible] की प्रवृत्ति इनमें भेद की सूचना करती है [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

सूचित करते हैं। ध्वनि के सम्बन्ध में उदीच्य की भाषाएँ सदैव कट्टर रही हैं, और यह बात उनके विषय में आज भी सत्य है, पूर्व में ध्वनिविकार शीघ्र हुआ, पर लहंदा और पंजाबी में संयुक्त व्यञ्जन, उनके पूर्व ह्रस्व का दीर्घ उच्चारण और अनुनासिकत्व अभी भी मध्य आर्यभाषाकाल का है। मध्यकालीन प्राकृतों में स्वरीभवन और आन्तरिक सम्पत्ति अधिक बढ़ी, बलात्मक स्वरसंचार का प्रश्न इसी से सम्बन्ध रखता है। डाक्टर चटर्जी की कल्पना है कि अघोष वर्णों का सघोष (क=ग) फिर संघोष का संघर्षी (ग=ग) और तब लोप हुआ। मध्य आर्यभाषा काल में इस आधार पर प्राकृतों के आदि मध्य और अंत ये तीन भेद किए जा सकते हैं। Aspirant का उच्चारण दो सदी ई० पू० से दो सदी ई० पश्चात रहा, ब्राह्मीवर्णमाला होने से लिखने में यह भेद व्यक्त नहीं हुआ, साहित्यिक शौरसेनीप्राकृत और मागधी में मध्यग क त न और थ के स्थान में ग ध द और ध करने की प्रवृत्ति थी, पर महाराष्ट्री प्राकृत में मध्यग व्यञ्जनों का लोप होने लगा, यह शौरसेनी का ही उत्तर वर्ती विकास है। महाराष्ट्रप्रदेश की भाषा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। डाक्टर घोष के अनुसार महाराष्ट्रीप्राकृत, शौरसेनीप्राकृत का दक्खिनी विकसित रूप है। इसी प्रकार पाली वस्तुतः मध्यदेश की भाषा थी इसे सिंहली और मागधी भी कहते हैं, पाली में कई बोलियों के उदाहरण हैं, यह उज्जैन से लेकर शूरसेन प्रदेश की भाषा थी, इसके अस्तित्व से यह पश्चिमी सिद्ध होती है न कि पूर्वी। अशोक के समय अशोकप्राकृत राजभाषा बनी, पर थोड़े समय बाद ही, उसका स्थान शौरसेनी प्राकृत ने ले लिया. महाराष्ट्री प्राकृत में इसका शैलीगत भेद है कविता की भाषा सदैव यही प्राकृत रहा।

भगवान् महावीर ने अपने उपदेश अर्धमागधी में किए. यह पूर्वी उत्तरप्रदेश और बिहार की तत्कालीन लोक भाषा थी, बुद्ध और महावीर की प्रेरणा से यह साहित्य का माध्यम बनी, अशोकीप्राकृत के नाम से यही राजभाषा भी बनी. बुद्ध के प्रवचनों का संकलन पहले गाथा में और बाद में पाली में हुआ जो मध्य देश की थी, बौद्धों के थेरोवादस्कूल के समय यही मुख्य भाषा थी। जैनों के अंगग्रंथों में अर्धमागधी का जो रूप है यह बादकी भाषा-स्थिति को सूचित करता है। खारवेल के शिलालेखों की भाषा में पाली और अर्धमागधी के उत्तरवर्ती विकास का मिलता-जुलता रूप है। यह कहा जा चुका है कि अशोक के समय मध्यदेशीय भाषाओं को स्थान नहीं दिया गया. पर उनके बाद शीघ्र ही शौरसेनी प्राकृत ने अपना सिक्का जमा लिया इसका मूल केन्द्र ब्रजमंडल था. संस्कृत नाटकों में संस्कृत के बाद इसीका नम्बर आता है, महाराष्ट्री इसीके बाद का विकास है. एक तरह से उसे अपभ्रंश और शौरसेनी प्राकृत के बीच की कड़ी समझना चाहिए। मध्यदेश भारत का हृदय है. अपभ्रंश का प्रथम परिचय २ सदी ई० से मिलने लगता है, पर वह साहित्यारूढ़ ६ वीं सदी में हो सकी। १२ वीं तक उसका समृद्धि-युग रहा. इस काल में भारतीय काव्य तीन धाराओं में प्रवाहित था। संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश। पर इस काल में अपभ्रंश अधिक व्यापक और जीवित भाषा थी। संस्कृत और प्राकृतों की अपेक्षा लोकजीवन का उसमें अधिक मिश्रण था. इसलिए तत्कालीन सामाजिकजीवन को समझने के लिए अपभ्रंश साहित्य के आलोडन अत्यन्त आवश्यक है। अपभ्रंश के बाद का स्थान स्पष्ट है इस प्रकार भाषा विकास की

दृष्टि से अपभ्रंश भारतीय परिवार की आर्य ईरानी शाखा में भारतीय आर्य परिवार की केन्द्रीय भाषा थी, आदिमध्ययुग के जातीय-जीवन भाषा और साहित्यिक प्रवृत्तियों की शताब्दियों का अक्षय कोष उसी के साहित्य में है। यह मध्ययुगीन प्राकृतों की अंतिम कड़ी है, उसके बाद आधुनिक आर्यभाषाओं का विकास हुआ। नीचे अपभ्रंश के विषय में विस्तृत विवेचन किया गया है।

अपभ्रंश शब्द

अपभ्रंश शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख पतञ्जलि के भाष्य में मिलता है। वह ईसा पूर्व दूसरी सदी में पुष्यमित्र शुंग के राजपुरोहित थे, वह लिखते हैं* शब्द थोड़े हैं अपशब्द बहुत हैं, एक ही शब्द के अनेक अपभ्रंश हैं, उदाहरण के लिए एक ही गौ शब्द के 'गावी गोणी गोता गोपोतलिका इत्यादि अपभ्रंश शब्द देखे जाते हैं। इस प्रकार भाष्यकार की दृष्टि में छंदस् और भाषा (संस्कृत) के शब्द ही साधु शब्द हैं शेष शब्द अपशब्द हैं। इसलिए अपभ्रंश का अर्थ हुआ लौकिक और वैदिक शब्दों से भिन्न शब्द। विभ्रष्ट (Corrupt) के अर्थ में यह शब्द उन्हों ने ग्रहण नहीं किया। क्योंकि ये शब्द तत्कालीन कई लोक भाषाओं में प्रचलित थे। भाषा-विज्ञान के अनुसार 'गावी' किसी प्रकार गौ का विकार हो भी सकता है, पर 'गोपोतलिका' का 'गौ' से विकास कभी नहीं सिद्ध किया जा सकता। भाष्यकार के समय चारों ओर प्राकृतों का पूरा-पूरा प्रचार था, बंगला में गावी और सिंधी में गोणी शब्द अभी भी प्रचलित

* अल्पीयांसः शब्दाः भूयांसोऽपशब्दाः एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा एकैकस्य गोशब्दस्य गावीगोणीगोतागोपोतलिकाइत्येवमादयः शब्दाः।

उकार बहुला प्रवृत्ति अपभ्रंश की है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि प्राकृतों का साहित्य में प्रयोग बुद्ध और महावीर के समय प्रारंभ हो गया था, और पतंजलि के समय उनका पर्याप्त आदर साहित्यिक वाणी के रूप में हो रहा था। प्राकृतों के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर भाष्यकार ने लिखा है कि यदि संस्कृत के प्रयोग में कोई भाषाविषयक शंका हो तो इस आर्य निवास में रहनेवाले कुम्भीधान्य और अलोलुप ब्राह्मणों से उसका समाधान कर लेना चाहिए। आर्य-निवास से उनका प्रयोजन मध्यदेश से था। यहाँ संस्कृत ने नाम रूप ग्रहण किया था, भरत मुनि का समय पतञ्जलि से ४०० वर्ष बाद बैठता है, अत प्राकृतों का भाषा के नाते साहित्यारूढ़ होना और शबरी आभीरी आदि बोलियों का बोल-चाल का माध्यम बनना स्वाभाविक था, इन भाषाओं में संस्कृत और प्राकृत के शब्द बहुलता से आते थे। इस प्रकार इस काल में अपभ्रंश शब्द का प्रयोग विभाषा के रूप में तो मिलता है, परन्तु उसकी साहित्यिकता का उल्लेख नहीं मिलता। आगे चलकर संस्कृत के विकृत शब्दों के अर्थ में अपभ्रंश शब्द चल पड़ा—जैसे स्निह का नेह सनेह इत्यादि। इस प्रकार अपभ्रंश के तीन अर्थ हुए (१) संस्कृत से भिन्न भाषाओं के शब्द (२) आभीरी भाषा (३) और संस्कृत से विकसित और विकृत शब्द।

विकास

अपभ्रंश के विकास सूत्र के क्रम का पता दो प्रकार से चलता है, एक तो साहित्य-मीमांसकों की आलोचना से और दूसरे उसके उपलब्ध साहित्य से।

भरत मुनि के उल्लेख में भाषारूप में अपभ्रंश का अभिन्नत्व प्रमाणित है उसके साथ शबरी आदि भाषाओं का भी उल्लेख

अपभ्रंश कहलाती है, जब हम व्याकरण शास्त्र की बात करते हैं तो अपभ्रंश का अर्थ होगा संस्कृत से भिन्न भाषाएँ। पतञ्जलि ने भी यही कहा था। पर काव्य के प्रसंग में आभीरी ही अपभ्रंश कहलाती है, अपभ्रंश उससे भिन्न भाषा नहीं है।

भाषाओं के आधार पर आचार्य दंडी ने काव्य के तीन भेद किये थे, पर ६ वीं सदी में रुद्रट* ने अपने 'काव्यालंकार' में छः भेद किए हैं। प्राकृत संस्कृत मागध पिशाच और शौरसेनी पांच भाषाकाव्य तो ये हुए, छठवां है अपभ्रंश काव्य। आगे वह कहता है कि देश † विशेष के कारण अपभ्रंश के अनेक भेद हैं, इससे अपभ्रंश काव्य की प्रसार भूमि का आभास मिलता है। ११ वीं सदी के मध्य में नामिसाधु ने रुद्रट के काव्यालंकार की टीका लिखते हुए प्राकृत शब्द का अर्थ लोक भाषा किया है।

प्राकृत-वैयाकरणों ने चार प्राकृतों को मुख्य माना है महाराष्ट्री शौरसेनी मागधी और पैशाची।

अपभ्रंश के भी चार भेद मुख्य हैं। नागर उपनागर केकय और व्राचड़। आचार्य हेमचन्द्र ने शौरसेनी अपभ्रंश का व्याकरण लिखा है। जैन विद्वान नामिसाधु ने रुद्रट के 'षष्ठोऽत्र भूरि भेद' और देश विशेषात्—की व्याख्या के अवसर पर जो विचार प्रकट किए हैं, उनसे कई महत्व के परिणाम निकलते हैं। उससे अपभ्रंश की विकास परम्परा का पूरा सूत्र मिल जाता है।

* [illegible]

[illegible]

† [illegible]

[illegible]

भाषा से है। उसने यह भी कहा है कि अपभ्रंश* का लक्षण लोक से ज्ञातव्य है। कहीं कहीं यह मागधी में भी देख पड़ती है"। जब एक भाषा लोकभाषा के रूप मे विस्तृत हो जाती है तब उसकी प्रकृति और प्रवृत्ति को लक्षण द्वारा समझना कठिन हो जाता है। प्रत्येक जीवित भाषा के बारे में यह सत्य है। इस प्रकार अपभ्रंश भाषा और साहित्य का पूर्ण विकास हो चुकने पर आचार्य हेमचन्द्र ने लक्ष्य ग्रन्थों के आधार पर प्रतिमित अपभ्रंश भाषा (Stardardised Language) का व्याकरण लिखकर उसे स्थिर कर दिया। राजशेखर, वाग्भट्ट, भोज, मार्कण्डेय, प्रभृति —साहित्याचार्यों ने अपभ्रंश पर जो कुछ लिखा है, वह उसके भेद प्रभेद साहित्य और विस्तार सीमा से अधिक सम्बन्ध रखता है। भाषा के विकास क्रम को समझने मे उससे अधिक सहायता नहीं मिलती।

आभीर जाति और अपभ्रंश

ऊपर हम देख चुके हैं कि आभीर जाति से अपभ्रंश का सम्बन्ध अनिवार्य रूप से जोड़ा जाता है। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि भारतीय इतिहास में उसका प्रथम [illegible] तक [illegible] है जहाँ तक [illegible] सम्बन्ध है [illegible] और इन्हीं ने [illegible] आभीरों का [illegible] समापर के अथ- [illegible] अर्जुन यादव [illegible] सदृयाद [illegible] के साहस [illegible]

* [illegible] १९११"

उल्लेख है, कुछ लोग गुजरात के आभीरों का सम्बन्ध आभीरों से जोड़ते हैं। आभीरों का प्रथम प्रवेश १५० ई० पूर्व हुआ ? उनकी अपनी स्वतंत्र भाषा थी, आभीरों की तरह गुर्जर भी यायावर थे ? आचार्य दण्डी ने 'आभीरादिगिरः' द्वारा इन्हीं की ओर संकेत किया है। उसके बाद दक्षिण केन्द्र का नम्बर आता है और सब पूर्वी केन्द्र का। यथार्थ केन्द्र बनाकर अपभ्रंश कवियों ने काव्य सृष्टि नहीं की, केवल अपभ्रंश साहित्य के प्रसार को समझने के लिए, यह विभाजन किया गया है' प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार—आभीरों को मारवाड़ और राजपूताने का ही मूल निवासी मानते हैं, जो भी हो परन्तु इतना निर्विवाद है कि आभीरी आभीरों की बोली थी।

अपभ्रंश में अन्य प्राकृतों की विशेषताएं

यद्यपि आचार्य हेमचन्द्र ने शौरसेनी अपभ्रंश का ही व्याकरण लिखा है, तो भी उसमें सभी प्राकृतों के लक्षण उपलब्ध हैं उसकी व्यापकता का यह भी एक प्रमाण है, शौरसेनी प्राकृत में मध्यग व्यञ्जन को कोमल (Soft) बनाने की प्रवृत्ति है उसमें 'त' का 'द' हो जाता है। अपभ्रंश में* भी मध्यग क ख त थ प फ को क्रमशः ग घ द ध और ब भ हो जाते हैं। जैसे कथित का कधिदु आदि। इसके ठीक विपरीत महाराष्ट्री+ प्राकृत मध्यग क ग च ज त द प य व के लोप करने की प्रवृत्ति अपभ्रंश में भी यह प्रवृत्ति है। जैसे—गत = गअ = गय, नूपुर = णेउर इत्यादि। महाराष्ट्री में आदि य का ज होता है, पर

* अनादौ स्वरादसंयुक्तानां क ख त थ प फां ग घ द ध ब भाः।

\+ क ग च ज त द प य वां प्रायो लोपः।

शौरसेनीवत् ८।४।४६।

आकारान्त रूप "तूँ कि थे जान्दा" अपभ्रंश का म्हाणी है। ... काल में तिङन्त और कृदन्त दोनों रूप चलते हैं। हिं... में कृदन्त और सहायक किया से काम चलाया जाता है। संस्कृ... में आज्ञा और विधि के रूपों में भेद है, अपभ्रंश में यह बात नहीं... कर्मवाच्य में चलिज्जइ और चलिअइ रूप होते हैं। क्रिया ... आदेश और संस्कृत के लज्जेयम् का लज्जेज्ज रूप ... विशेषता है।

अव्यय—प्राकृत और अपभ्रंश के अव्यय में ... है, झटरि आदि आश्चर्य बोधक अव्यय अपभ्रंश की अपनी ... सम्पत्ति है। "म्रशादीनां छोल्लादयः" में बहुत सी ऐसे धातु... जिनका प्राकृत धातुओं से कोई सम्बन्ध नहीं।

साहित्यशैली की दृष्टि से भी प्राकृत और अपभ्रंश ... भिन्न हैं, प्राकृत में राजशेखर ने संस्कृत छंदों* का प्रयोग ... है। फिर भी प्रत्येक भाषा का अपना औरम छंद है, ... का अनुष्टुभ, प्राकृत का गाथा, और अपभ्रंश का दूहा। ... आदि—अपभ्रंश के नये छंद हैं। अन्त्यानुप्रास, पहले ... अपभ्रंश में ही देख पड़ता है। संस्कृत महाकाव्य के सर्ग ... [illegible] प्राकृत काव्य के सर्ग का आश्वास, और अपभ्रंश के ... के सर्ग [illegible] कड़वक कहते हैं। इस प्रकार अपनी विशेषताएँ ... [illegible] व्याकरण [illegible] और साहित्य शैली की दृष्टि ... [illegible] स्वतन्त्र [illegible] स्थान [illegible] है

की भाषा को पुरानी बंगला कहा है। इसी प्रकार—महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वरी की टीका जिस भाषा में हुई है उसमें अपभ्रंश और वहाँ की प्रांतीय भाषा के रूपों तथा शब्दों का मेल है, प्राचीन गुजराती 'निबंध-संग्रह' पश्चिमी भारत की अवहट्ट को सूचित करते हैं, राजस्थान में चंदबरदायी के—पृथ्वीराज रासो में ब्रज का मेल होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार रोमन-साम्राज्य ध्वंस होने के बाद वहाँ की भाषा लुप्त होने पर अनेक भाषाएँ उठ खड़ी हुईं, वही बात अपभ्रंश के लुप्त होने पर यहाँ हुई। इस प्रकार अवहट्ट अपभ्रंश से जुड़ी भाषा है, और यह आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं तथा अपभ्रंश के बीच की कड़ी है। कम से कम ३०० वर्ष इसका विकास काल चुना गया है।

अपभ्रंश का व्याकरण

आ० वररुचि प्राकृतों के पहले वैयाकरण माने जाते हैं उन्होंने महाराष्ट्री पैशाची मागधी और शौरसेनी का ही व्याकरण लिखा है। अर्धमागधी का उल्लेख उनके प्राकृतप्रकाश में नहीं हुआ। जान पड़ता है कि उनके समय तक अर्धमागधी-साहित्य का उदय नहीं हुआ था। उनका आविर्भाव-काल ई० ४ थी सदी है। चंड कवि पहले प्राकृत वैयाकरण थे जिन्होंने अपने प्राकृत लक्षण में अपभ्रंश का भी उल्लेख किया है। एक सूत्र में यह नियम बताया गया है कि [illegible] में अधः स्थित रेफ का लोप नहीं होता। उनके

[illegible] ने अपभ्रंश की [illegible] । साहित्य-
[illegible] छिट फुट [illegible] नहीं से
[illegible] उन्नति [illegible] हेमचन्द्र
[illegible] जिस
[illegible]

भाषा थी, फिर भी उसमें कई भाषाओं का मेल है। उदाहरण के लिए जैसे तृणु तिणु, सुवें और सुयें, कमलु और कवंलु, करंति और करहिं। आज्ञा में करि और करे, भविष्यत्काल में 'स' को जगह 'ह' तथा कर्मवाच्य में किज्जइ और करिअइ—ये दुहरेरूप दो भाषाओं के मेल को सूचित करते हैं।

आचार्य हेमचन्द्र ने धात्वादेश के सिवा १२० सूत्रों में नियमों उल्लेख किया है। उनके व्याकरण का मुख्य आधार शौरसेनी अपभ्रंश है उनके बाद त्रिविक्रम लक्ष्मीधर और सिंहराज ने भी अपभ्रंश की चर्चा की है, इनमें त्रिविक्रम (छठ वीं सदी) ने तो बात बात में हेमचन्द्र की नकल की है और इसलिए उसके व्याकरण में कोई मौलिकता नहीं। क्रम विपर्यय और सूत्र-विच्छेद द्वारा उसने एक प्रकार से हेमचन्द्र के व्याकरण को उतार दिया है।

दो चार सूत्रों के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा।

हेमचन्द्र	त्रिविक्रम
(-) शीघ्रादीनां वहिल्लादयः	(२) वहिल्लगाः शीघ्रादीनाम्
(।) स्वराणां स्वराः प्रायोऽपभ्रंशे	(!) प्रायोऽपभ्रंशेऽच्
(१) वा राधो लुक्	(?) रोलुक्

फिर भी उन्होंने दो बातें महत्त्वपूर्ण की हैं, एक तो अपभ्रंश उदाहरणों की संस्कृत छाया दी है और दूसरे अपने के ग्रंथ में बहुत से देशी शब्दों की सूची दी है हेमचन्द्र की शब्दसूची से यह सूची बहुत बड़ी है। इन शब्दों के अध्ययन से अपभ्रंश की तत्कालीन स्थिति और प्रवृत्ति के विषय में अधिक जानकारी मिलने की [illegible] है कुछ [illegible] पुरानी गाथाओं के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] हैं

की भाषा को पुरानी बंगला कहा है। इसी प्रकार—महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वरी की टीका जिस भाषा में हुई है उसमें अपभ्रंश और वह की प्रांतीय भाषा के रूपों तथा शब्दों का मेल है, प्राचीन गुजराती 'निरंध-समह' पश्चिमी भारत की अवहट्ट को सूचित करते हैं राजस्थान में चंदबरदायी के—पृथ्वीराज रासो में ब्रज का मेल होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार रोमन-साम्राज्य ध्वस्त होने के बाद वहाँ की भाषा लुप्त होने पर अनेक भाषाएं उठ खड़ी हुईं, यही बात अपभ्रंश के लुप्त होने पर यहाँ हुई। इस प्रकार अवहट्ट अपभ्रंश से जुड़ी भाषा है, और यह आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं तथा अपभ्रंश के बीच की कड़ी है। कम से कम १२०० वर्ष इसका विकास काल कूता गया है।

अपभ्रंश का व्याकरण

आ० वररुचि प्राकृतों के पहले वैयाकरण माने जाते हैं उन्होंने महाराष्ट्री पैशाची मागधी और शौरसेनी का ही व्याकरण लिखा है। अर्धमागधी का उल्लेख इनके प्राकृत प्रकाश में नहीं हुआ। जान पड़ता है कि इनके समय तक अर्धमागधी-साहित्य का उदय नहीं हुआ था। इनका आविर्भाव-काल ई० ४ थीं सदी है। चंड कवि पहले प्राकृत वैयाकरण थे जिन्होंने अपने प्राकृत लक्षण में अपभ्रंश का भी उल्लेख किया है। [illegible] सूत्र में यह नियम बताया गया है कि अपभ्रंश में [illegible] रेफ का लोप नहीं होता। [illegible]

[illegible]

भाषा थी, फिर भी उसमें कई भाषाओं का मेल है। उदाहरण के लिए जैसे लुणु लिलु, तुमें और तुमँ, करतु और करंतु, करंति और करहि। आज्ञा में करि और करे, भविष्यत्-काल में 'स' की जगह 'ह' तथा कर्मवाच्य में किज्जइ और करिज्जइ—ये दुहरेरूप दो भाषाओं के मेल को सूचित करते हैं।

आचार्य हेमचन्द्र ने धात्वादेश के सिवा १२० सूत्रों में नियमों उल्लेख किया है। उनके व्याकरण का मुख्य आधार शौरसेनी अपभ्रंश है उनके बाद त्रिविक्रम लक्ष्मीधर और सिंहराज ने भी अपभ्रंश की चर्चा की है, इनमें त्रिविक्रम (१३ वीं सदी) ने तो बात बात में हेमचन्द्र की नकल की है और इसलिए उनके व्याकरण में कोई मौलिकता नहीं। क्रम विपर्यय और सूत्र-विच्छेद द्वारा उसने एक प्रकार से हेमचन्द्र के व्याकरण को उतार दिया है।

दो चार सूत्रों के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा।

हेमचन्द्र	त्रिविक्रम
(-) शीघ्रादीनां वहिल्लादयः	(२) वहिल्लगाः शीघ्रादीनाम्
(१) स्वराणां स्वराः प्रायोऽपभ्रंशे	(!) प्रायोऽपभ्रंशेऽच्
(१) वा राधो लुक्	(?) रोलुक्

फिर भी उन्होंने दो बातें महत्त्वपूर्ण की हैं, एक तो अपभ्रंश उदाहरणों को सम्पूर्ण दिया है और दूसरे अपने के ग्रंथ में बहुत से देशी शब्दों की सूची दी है। हेमचन्द्र की शब्दसूची से यह पता बहुत बड़ा है। इन शब्दों के अध्ययन से अपभ्रंश की तत्कालीन स्थिति और प्रचलन के विषय में अधिक जानकारी [illegible]
[illegible]
[illegible]

उमरी = उच्चजल, स्थली
वेड्ड = फैलना, फेन, श्याल और दुर्बल,
ओहम् = नीवी और अवगुंठन
घमार = गुफा और संघरत
मोल, तोड्ड = पिशाच और शलभ
डिम्बा = आतंक और त्रास
लुची = लन और स्तबक
अमार = नदी के बीच का टीला, कछुआ
करोड = कौआ, नारियल और बैल,
उप्पल = बकरी
काटिली = व्याकरण और भाट
काएड = सिंह और कौआ
• झाड = लतागहन
गंपी = सम्पत्ति और बाला

इन शब्दों को त्रिविक्रम ने देशी कहा है, देश विशेष में व्यवहार होने से उन्हें सिद्ध अथवा प्रसिद्ध समझना चाहिए।

हेमचंद और अपभ्रंश

संस्कृत का व्याकरण लिखकर जिस प्रकार पाणिनि अमर हो गए उसी प्रकार आचार्य हेमचंद्र अपभ्रंश का व्याकरण लिखकर। १२ वीं सदी में यह विलक्षण प्रतिभा लेकर उत्पन्न हुए। सं० ११४५ में उनका जन्म हुआ और शरीरांत १२२९ में। उनके तीन नाम बदले। जन्म का नाम चंगदेव, दीक्षा का नाम सोमचन्द्र और सूरि होने पर हेमचन्द्र। सिद्धराज जयसिंह के यहाँ

• झाडो लतागहनं. शब्दाः देश्या देशविशेषव्यवहारप्रसिद्धत्वमानाः सिद्धाः निष्पन्नाः प्रसिद्धा वा वेदितव्याः।

उनका बड़ा मान था, राजा स्वयं शैव था, परन्तु यह सब धर्मों का आदर करता था। सिद्धराज के लिए हेमचंद्र ने अपना प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ सिद्धहैमशब्दानुशासन लिखा। कुमारपाल के समय हेमचंद्र का और भी मान बढ़ा। तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों में गुरु-शिष्य की यह जोड़ी खूब प्रसिद्ध हुई। धार्मिक देशना के सिवा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में किया। काव्य साहित्य शास्त्र, न्याय कोष और व्याकरण सभी पर उनके ग्रंथ उपलब्ध हैं। अभिधान चिंतामणि देशीनाममाला छंदानुशासन काव्यानुशासन आदि उनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। राज्य की ओर से उनकी सहायता के लिए ५०० लेखकों और राजताड़पत्र का प्रबन्ध था। भारतीय भाषा और साहित्य के इतिहास में पाणिनि के बाद शायद आचार्य हेमचंद ही हुए जिन्होंने पिछली भाषाओं के साथ अपने समय की भाषा का भी व्याकरण लिखा। पाणिनि की तरह वह भी [illegible] थे मनुष्य ही भाषा का [illegible] करता है और वह उसे अमर बनाता है. आचार्य हेम- [illegible] उसे अमर कर दिया. [illegible]

स्पष्ट है कि अपभ्रंश पच्छिमी प्रदेश ही नहीं, पूर्वी प्रदेश की भी भाषा रही होगी। उदाहरण के लिए देखिए।

अपभ्रंश	बनारसी
दिअहा जंति झडप्पडहिं	दिनवाँ जाँय झटपटय
पडहिं मनोरह पच्छि	पडय मनोरथ पाछ
पडइ	पाटय
पुत्ते जाए कवण गुणु अवगुणु	पूत भइले कवन गुन
कवणु मुएण	अवगुन कवन मुअले
जा बप्पीकी भुहंडी	जेकर बापेक भुइयाँ
चम्पिज्जइ अवरेण	चांपल जाय अवरे।
अा गोरी मुह निज्जिअउ	ऊ गोरी मुंह जीतल
बद्दलि लुक्कु मियंकु	बदरे लुकल मयंक
अन्नु वि जो परिहविय तणु	आनो जे धूनल से
सो किव भवइ निसंकु	कैसे घूमय निसंक
एक कुडुल्ली पंचहिं रुद्धि	एक कुडुल्ली पांच रुद्धी पाचों
तहं पंचह वि जुअं जुअ बुद्धि	क वी जुदे जुदा बुद्धि

(१) इस प्रकार भोजपुरी के जवन तवन कवन आदि [illegible]

[illegible] होते है

[illegible] शब्द अपभ्रंश के [illegible]

[illegible] जा अन आदेश [illegible] है

[illegible] प्रथम गाथा [illegible] है

(६) खल्लडउ=खल्लड़, घम्पिल्लउ=चांपलजाय यद्धलि=यद्दे, लुक=लुक्ल में जो समानता है, वह दोनों भाषाओं के तात्विक सम्बन्ध को सूचित करती है।

(७) र मागधी में ल होता है, कभी यह विशेषता पश्चिमी और मध्यदेशीय भाषा में भी रही है, अपभ्रंश में सभी प्राकृतों के लक्षण पाए जाते हैं।

(८) स्वार्थिक प्रत्यय डड,अ आदि का प्रभाव मुखड़ा दुखड़ा आदि में अभी भी देख पड़ता है।

(६) अपभ्रंश की मुख्य प्रकृति उकार बहुला है पूर्वी नामों में अभी भी यह उपलब्ध है—रामू ननकू आदि। इस प्रकार हजार वर्ष पुरानी भाषा के नमूने आज भी बोलियों में मिलना यह सूचित करता है कि अपभ्रंश का आधुनिक बोलियों से सम्बन्ध अलग नहीं किया जा सकता। अब दूसरा तर्क यह रह जाता है, कि अपभ्रंश काव्य भाषा थी। इसका समाधान भरत रुद्रट और नमिसाधु के उल्लेखों से हो जाता है, अन्यत्र इसका विचार किया जा चुका है, अतः अपभ्रंश बोलचाल की भाषा रही। आगे चलकर उसका काव्य भाषा के रूप में विकास हुआ। उसे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जननी मानना सर्वथा उचित है।

अपभ्रंश और कालिदास

भरत मुनि के बाद महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशी में अपभ्रंश का प्रयोग मिलता है। राजा पुरूवा ने अपना मत्तप्रलाप अपभ्रंश में ही किया है शब्द प्राकृत होते हुए भी रूपावली अपभ्रंश की है। अन्त्यानुप्रास मिलना भी इसकी विशेषता है। अतः रूपों और तुकबंदी के आधार पर इसे भरत मुनि के बाद की अपभ्रंश कहना चाहिए। पर जैकोबी और प्रो० गुणे प्रभृति विद्वान्

संस्कृतं प्रकृतिः

'संस्कृतं प्रकृतिस्तत्रभवं तत आगतं वा प्राकृतम्'—आचार्य हेमचंद्र ने यह, चाहे अपने व्याकरण के क्रम को लक्ष्य में रखकर कही है। इनका क्रम है संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश। प्राकृत से उनका आशय महाराष्ट्री प्राकृत से है, मागधी का दूसरा नाम आर्षप्राकृत भी है, प्रायः सभी प्राकृत वैयाकरणों का उपजीव्य संस्कृत व्याकरण ही रहा है, उन्होंने संस्कृत व्याकरण के नियमों और प्रवृत्तियों से अपवाद और विशेष नियम बताकर ही प्राकृतों का व्याकरण लिखा है। प्राकृतों की प्रकृति और प्रत्ययों का स्वतंत्र दृष्टि से विचार नहीं किया। रूपरचना और ध्वनिविज्ञान दोनों के विवेचन का आधार संस्कृत है जहां संस्कृत से काम नहीं चला वहां विशेष आदेश कर दिए गए हैं। आचार्य हेमचंद्र के 'संस्कृत प्रकृतिः' का भी यही अभिप्राय समझना चाहिए। पहले उन्होंने संस्कृत का पूरा व्याकरण लिखा और उसके बाद महाराष्ट्रीप्राकृत के विशेष शब्दों ध्वनियों और रूपों का अनुशासन किया, शेष के लिए 'शेषं संस्कृतवत्' कह दिया। प्राकृत के बाद शौरसेनी का अनुशासन करके उन्होंने लिखा है "शेषं प्राकृतवत्" और जो प्राकृत से सिद्ध न हो उसे 'संस्कृतवत्' समझना चाहिए मागधी के लिए शौरसेनी प्रकृति है। अपभ्रंश के लिए प्रकृति है शौरसेनी प्राकृत और संस्कृत। यह व्याकरण परम्परा का क्रम है। [illegible] पाणिनि ने सबसे पहले संस्कृत का व्यवस्थित और वैज्ञानिक व्याकरण लिखा [illegible] व्याकरण का [illegible] है। इस [illegible] के व्याकरणों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] संस्कृत [illegible] है [illegible] संस्कृत

के बाद सरहपा का कण्हदोहा कोष अपभ्रंश में मिलता है। शृंगार वीर और नीति की स्फुट रचनाएँ भी बड़ी गम्भीर और मार्मिक मिलती हैं ८ वीं १० वीं सदी में महाकवि स्वयम्भू ने हरिवंश पुराण और पउमचरिउ की रचना की। बाद में उनके पुत्र त्रिभुवन ने पिता का अधूरा काम पूरा किया। धनपाल ने 'भविसत्त कहा' बनाई, और महाकवि धवल ने 'हरिवंश' पुराण रचा, इसमें जैनतीर्थंकर नेमिनाथ और महावीर का जीवन चरित्र है। ११ वीं सदी में महेश्वर ने संयममंजरी बनाई, महाकवि पुष्पदन्त का 'महापुराण' भी इसी युग की रचना है। श्रीचंद मुनि का कथा कोष, सागरदत्त का जम्बुस्वामीचरित, पद्मकीर्ति का पार्श्वपुराण, नयनंदि का सुदर्शनचरित्र और आराधना कथा-कोष इसी सदी में रचा गया। अभयदेवसूरी का 'जय तिभुवन' गाथास्तोत्र हेमचन्द्र के गुरु देवचन्द्र का सुलसाख्यान और शांतिनाथचरित्र, वर्धमान सूरी का वर्धमानचरित्र, श्री लक्ष्मण-गणी का संदेशरासक और प्राकृत सुपासनाहचरिउ में अपभ्रंश अंश, जिनदत्तसूरी का उपदेशरसायनचर्चरी, और काल स्वरूप कुलक, धाहिल कवि का पद्मिनीचरित्र, १२ वीं सदी की अपभ्रंश रचनाएँ हैं। हेमचन्द्र के बाद १३ वीं सदी में महेन्द्र ने योगसार और परमात्म प्रकाश लिखे, माइल्ल धवल ने दर्शनसार का अपभ्रंश दोहों में अनुवाद किया। दोहाकाव्य में दोहा-कोष के बाद पाहुडदोहा सावय-धम्मदोहा दोहाकाव्य की उत्तम रचनाएँ हैं। इनमें धर्म तथा सदाचार सम्बन्धी दोहे हैं। इस प्रकार १३ वीं सदी तक अपभ्रंश साहित्य की कृतियाँ उपलब्ध होती हैं उसके बाद अवहट्ट काल आता है। इस काल में भी छिटपुट अपभ्रंश रचनाएँ होती रहीं।

संस्कृतं प्रकृतिः

'संस्कृतं प्रकृतिः तत्रभवं तत आगतं वा प्राकृतम्'—आचार्य हेम-चंद्र ने यह पंक्ति अपने व्याकरण के प्रसंग में [illegible] कही हैं। उनका क्रम है संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिकापैशाची और अपभ्रंश। प्राकृत से उनका आशय महाराष्ट्री प्राकृत से है, महाराष्ट्री का दूसरा नाम आर्षप्राकृत भी है. प्रायः सभी प्राकृत वैयाकरणों का दृष्टिकोण संस्कृत व्याकरण ही रहा है, उन्होंने संस्कृत व्याकरण के नियमों और प्रकृतियों के अपवाद और विशेष नियम बताकर ही प्राकृतों का व्याकरण लिखा है। प्राकृतों की प्रकृति और प्रवृत्ति का स्वतंत्र दृष्टि से विचार नहीं किया। रूपरचना और ध्वनिविधान दोनों के विवेचन का आधार संस्कृत है, जहां संस्कृत से काम नहीं चला वहां विशेष आदेश कर दिए गए हैं। आचार्य हेमचंद्र के 'संस्कृतं प्रकृतिः' का भी यही अभिप्राय समझना चाहिए। पहले उन्होंने संस्कृत का पूरा व्याकरण लिखा और उसके बाद महाराष्ट्री प्राकृत के विशेष शब्दों, ध्वनियों और रूपों का अनुशासन किया, शेष के लिए 'शेषं संस्कृतवत्' कह दिया। प्राकृत के बाद शौरसेनी का अनुशासन करके उन्होंने लिखा है "शेषं प्राकृतवत्" और जो प्राकृत से सिद्ध न हो उसे 'संस्कृतवत्' समझना चाहिए। मागधी के लिए 'शौरसेनीवत्' प्रमाण है। अपभ्रंश [illegible] यह व्याकरण परम्परा।

[illegible]

से प्राकृतों का विकास हुआ। इसी प्रकार संस्कृत का अर्थ है संस्कार की गई भाषा, पर इसका आशय यह नहीं है कि प्राकृतों से संस्कृत का विकास हुआ। पाणिनि ने भाषा के अर्थ में संस्कृत शब्द का व्यवहार नहीं किया। उन्होंने 'छंदस् और लौकिक भाषा' संज्ञा दी है। वस्तुत: उन्होंने छंदस् और ब्राह्मण ग्रंथों की भाषा के आधार पर संस्कृत का व्याकरण लिखा, उस समय यह भाषा पश्चिमोत्तर गंगा जमुना द्वाब में बोली के रूप में रही होगी, पाणिनि के अष्टाध्यायी से स्पष्ट है कि उस समय देश में कई विभाषाएं थीं। अत: व्याकरण का पूर्वापर होना भाषा के पूर्वापरपन को सूचित नहीं करता। जो बातें अपभ्रंश के प्रसंग में नहीं गई हैं उनका ज्ञान शौरसेनी से कर लेना चाहिए और जो शौरसेनी से सिद्ध नहीं होतीं उन्हें महाराष्ट्री से, और फिर संस्कृत से। यह क्रम ध्यान में रखने से अपभ्रंश का स्वरूप सरलता से समझ में आ जायगा। आ० हेमचंद्र ने सिद्ध और साध्यमान दोनों प्रकार के शब्द संस्कृत से लिए हैं, कोई भी भाषा अमरबेल की तरह निराधार नहीं फैलती, पहले वह प्रादेशिकभूमि में नामरूप ग्रहण करती है तब फिर राजनैतिक सांस्कृतिक या साहित्यिक कारणों से सारे देश में व्याप्त होती है। वैयाकरणों की अधिक कसावट और साहित्यिकों की साज संवार से जब लोकभाषा रूढ़ और प्राणहीन हो जाती है तो नई भाषा उसका स्थान ग्रहण करती है। भाषा का शासन लोक (जनता) के आधीन है। वैयाकरण उसका अनुशासन करते हैं, साक्षात् शासन नहीं। [illegible] बीज था, और [illegible] [illegible] बहुत कुछ [illegible] भाषाओं में [illegible] है।

वर्णमाला

वर्ण शब्द प्रतिनिधि और रंग का वाचक है। दोनों अर्थों के विचार से यह सार्थक शब्द है। लिखित और उच्चरित दोनों तरह की ध्वनि के लिए वर्ण शब्द का प्रयोग होता है। अक्षर Syllable को कहते हैं, एक झटके में जितना स्वर व्यञ्जन समूह उच्चरित होता है, वह अक्षर कहलाता है. अतः वर्ण और अक्षर का अलग अलग अर्थ है. वर्ण के दो भेद हैं. स्वर और व्यञ्जन, स्वर उस शुद्ध नाद ध्वनि को कहते हैं जिसके उच्चारण में अन्य ध्वनि की आवश्यकता नहीं पड़ती, स्वर में स्वनंततत्त्व (Sonatary) व्यञ्जन की अपेक्षा अधिक रहता है, इसलिए उसका उच्चारण देर तक किया जा सकता है, उच्चारण की दृष्टि से स्वरों का स्वतन्त्र 'अस्तित्व'• है, पर व्यञ्जन के उच्चारण में स्वरों की सहायता आवश्यक है स्वर के बिना, व्यञ्जन का उच्चारण सम्भव नहीं। स्वर आक्षरिक (Syllabicater) होते हैं, आधुनिक भाषा विज्ञानी—र और ल को भी आक्षरिक मानते हैं, व्यञ्जन में भी मात्रा का विचार किया जा सकता है। अपभ्रंश में निम्नवर्णों का व्यवहार होता है।

(१) स्वर— अ इ उ ऍ ओॅ [ह्रस्व]
आ ई उ ए ओ [दीर्घ]

व्यञ्जन— क ख ग घ (कण्ठ्य)
च छ ज झ (तालव्य)
ट ठ ड ढ (मूर्धन्य)

त	थ	द	ध	न	(दन्त्य)
प	फ	ब	भ	म	(ओष्ठ्य)
य	र	ल	व		(अन्तस्थ)
स	ह				(ऊष्म)

स्वर विकार

संस्कृत के 'ऋ लृ ऐ और औ' में से अंतिम तीन स्वरों का अपभ्रंश में बिलकुल व्यवहार नहीं होता ऋ का विकल्प से व्यवहार होता है। इन स्वरों के स्थान में निम्न विकार होते हैं

(क) लृ = इ और इलि, क्लृप्त = किलो, किलिन्नो,

(ख) ऐ = ऍ, ए, अइ,
ऍ = अपरैक = अवरॅक
ए = दैव = देव
अइ = दैव = दइअ

(ग) औ = ओ ऑ अउ
ऑ — यौवन = जॉव्वण ओ = गौरी = गोरी
अउ — पौर = पउर गौरी = गउरी।

(घ) ऋ — अ — तृण = तणु, पृष्ठ = पट्ठि
इ — तृण = तिणु, पृष्ठ = पिट्ठि
उ पृष्ठ = पुट्ठि
अ, आ = कृत्य = कच्चु, काच्चु
ए — गृह = गेह
रि रि — ऋच्छ - रिच्छ ऋषभ - रिसहो
ऋ सुकृत सुकृदु तृण – तृणु

संस्कृत में ह्रस्व ए और ओ का व्यवहार नहीं है, किन्तु प्राकृत और अपभ्रंश में है इस बात को लक्ष्य करते हुए

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण में कहा है कि अपभ्रंश में कादि व्यञ्जनों में रहने वाले ए और ओ का लघु उच्चारण होता है।

जैसे—"तसु हउं कलि जुगि दुल्लहहो"

"सुधे चिन्तिज्जइ माणु"

इन अवतरणों में रेखांकित ओ और ए का लघु उच्चारण होता है, इनका दीर्घ उच्चारण करने पर एक मात्रा बढ़ जाने से छंदोभंग हो जायगा।

(२) पद के अंत में स्थित उं हुं हिं और हं का भी लघु उच्चारण होता है,

(१) अन्नु जु तुच्छउं तहे धनहे ?

(२) दइवु घटावइ वणि तरहुं

(३) तरुहुं वइल्ली भंगि नवि

इनमें रेखांकित वर्णों का ह्रस्व उच्चारण समझना चाहिए, संस्कृतप्रदेश की भाषा होने से आधुनिक हिन्दी में भी ह्रस्व ए और ओ नहीं हैं। उनके स्थान में ह्रस्वादेश करने की प्रवृत्ति है।

जैसे—ऍछा = इछा

सोॅनार = सुनार

वैदिक और लौकिक संस्कृत में ह्रस्व एकार और ओकार का [illegible] नहीं है [illegible] से लेकर सरस्वती के सुत होने [illegible] में यह बात [illegible] है [illegible]

व्यवहार होता आ रहा है, वर्णमाला और लिपि एक होने से वैयाकरणों ने इसका उल्लेख नहीं किया। देवनागरी वर्णमाला में इनके लिए स्वतंत्र-लिपि-चिह्न नहीं है। हिन्दी की बोलियों (ब्रज, अवधी) आदि में भी इनका व्यवहार होता है।

इन स्वरों के अतिरिक्त शेष स्वरों में भी विकार होते हैं।

(३) अपभ्रंश में एक स्वर के स्थान में प्रायः दूसरा स्वर आ जाता है।

उदाहरण—

अ = इ = कृपण = किविण

अ = उ = मनुते = मुणइ

अ = ए = वल्ली = वेल्लि

आ = अ सीता = *सीय

आ = उ = आर्द्र = उल्ल

आ = ए = मात्र = मेत्त, दा = देइ, ला = लेइ,

इ = अ = प्रतिपत्ति = पडिवत्त

इउ—इक्षु = उच्छु

इ = इ = ए { बिल्व = वेल्ल, इत्थु = एत्था }

ई = { अ—हरीतिकी = हरडइ,
आ—काश्मीर = कम्हार
उ—विहीन—विहूण
ए—ईदृश—एरिस, वीणा = वेण
ए क्रीडा = खेड्ड }

+ स्वरागम स्वर [illegible] प्रतिपत्ति [illegible]।

* स्त्रीलिंग आकारान्त ईकारान्त शब्दों को ह्रस्व करने की अपभ्रंश सामान्य प्रवृत्ति है।

उ=
- अ
  - मुकुट=मउड बाहु=बाह !
  - मुकुलयति=मउलइ
  - सुकुमार=सउमार
- इ:—पुरुष=पुरिस
- ओँ
  - मुद्गर=मोँग्गर
  - पुस्तक=पोँत्थय
  - कुन्त=कोँन्त

ऊ=
- ए—नूपुर=नेउर
- ओँ—मूल्य=मोँल्ल
- ओ—स्थूल =थोर
- ताम्बूल=ताम्बोँल

ए= इ ई—लेखा-लीह, लिह,

(क) अनुस्वार युक्त ह्रस्व स्वर के आगे यदि र स श ष या ह हो तो ह्रस्व को दीर्घ और अनुस्वार का लोप हो जाता है।

विंशति=वीस

सिंह=सीह

(ख) अपभ्रंश में छंद के अनुरोध से ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व होता है।

(ग) कई स्थलोंपर ह्रस्व को दीर्घ न करके अनुस्वार कर देते हैं।

दर्शन=दंसण, स्पर्श=फंस, अश्रु=अंसु।

व्यञ्जन-विकार

साधारण रीति से शब्द के आदिव्यञ्जन में विकार नहीं होता, इसके अपवाद भी हैं धृति - दिहि दुहिता - धुआ, ...

मूर्धन्यभाव

दन्त्य व्यञ्जन के स्थान में मूर्धन्य व्यञ्जन आता है।

त = ड = पतित = पडिअ

पताका = पडाय

थ = ठ = ग्रंथिपाल = गंठिपाल

द = ड = दहति = डहइ

क्षुधित = खुडिय

दोलायते = डोलइ

दुष्कर = डुक्कर

ध = ढ = विदग्ध = वियड्ढ

विशेष परिवर्तन

छ—आदि 'छ' भी ज्यों का त्यों रहता है जैसे—छण्ण। दो स्वरों के बीच में स्थित छ को च्छ होता है।

ज = य जानीम = याणिम, यह मागधी की प्रवृत्ति है। इसी प्रकार ज को य करने की प्रवृत्ति बोली विशेष में हो सकती साहित्यिक अपभ्रंश में इसका बहुत कम प्रयोग हुआ है। जैसे—अर्जुन का अज्जुण।

ड = ल = क्रीडा = कील, षोडश = सोलस, तडाग = तलाउ,

निगड = नियल, पीडित = पीलिय

न = ल = अतसी = अलसी, विद्युल्लिका = विज्जुलिया

य = ज = यमुना = जमुना यम = जमु

[illegible]

[illegible]

[illegible]

क्लेश = किलेश
अमर्ष = अमरिष
वर्ष = वरिस

स्वरभक्ति का भेद ही अपनिहिती (Epenthesis) है, जिस शब्द के अंत में इ, ए, उ या ओ हो तो बीच में इ या उ का आगम होता है, और वह तीसरे स्वर को बदल देता है।

वल्लि = वल्ल + इ, इस स्थिति में ल्ल के पहले इ का आगम होने पर व + इ + ल्ल + इ रूप हुआ, गुण करने पर 'वेल्लि' रूप बनता है।

ब्रह्मचर्य = वम्म च + र् + इ (य को सम्प्रसारण)
= वम्म च + इ + र् + इ (इ का आगम)
= वम्मचेर   (गुण)

वर्ण विपर्यय (Metathesis)

गृह् = हर
हर्ष = रहस
दह् = हद

वर्णविकार

वर्णविकार में दो समीपवर्ती ध्वनियाँ एक दूसरे के अनुरूप या प्रतिरूप बदल जाती हैं, इसे सावर्ण्यभाव (Assamilation) और असावर्ण्यभाव = (Disassamilation) कहते हैं, पूर्वसावर्ण्यभाव = (Progressive Assamilation) और (Regressivl Assamilation)

परसावर्ण्यभाव

युक्त = जुत्त
रक्त = रत्त

विशेष प्रवृत्ति

द्वित्व

(क) अनुनासिक व्यञ्जन या अन्तस्थ वर्णों (य र ल व) मे अन्तस्थ वर्ण परे हों तो पूर्व को द्वित्व हो जाता है

न + य = कण्ण = कन्या

ल + य = कल्ल = कल्य

व + य = कव्व = काव्य

र + व = सव्व = सर्व

र + ल = दुल्लिलित = दुर्ललित

(ख) सामान्य व्यञ्जन से अन्तस्थ परे रहते, सामान्य को द्वित्व होता है।

क + य = वक्क = वाक्य

क + र् = चक्क = चक्र

प + ल = विप्पव = विप्लव

क + व = पिक्क = पिक

रूपविचार

(MorPhology)

भाषा की अवयुति वाक्य है, वाक्य से ही भाषा शुरु होती है। वाक्य के खंड को पद कहते हैं. पद वाक्य में तभी प्रयुक्त होते हैं जब वे अन्वय योग्य साकांक्ष और आसन्न हों। साधारणतया पद का ज्ञान सभी को होता है. परन्तु प्रकृति और प्रत्यय का विश्लेषण करना भाषाविज्ञानी और वैयाकरण का काम है। पद में दो अंश रहते हैं प्रकृति और प्रत्यय। प्रकृति अर्थ तत्त्व को सूचित करती है. और प्रत्यय सम्बंध तत्त्व को। यह प्रकृति दो प्रकार की है. प्रातिपदिक Stem और धातु Root इन्हीं में प्रत्यय लगाकर पदों की रचना की जाती है। शब्द रूपों को सुबन्त कहते हैं और धातु रूपों को तिङन्त यहाँ सुबन्त रूपों का [illegible]

संस्कृत		अपभ्रंश
बाहु	=	बाहु बाहा
स्वसृ	=	सस
भ्रातृ	=	भायर
मनस्	=	मन
जगत्	=	जग
युवन्	=	जुव्वाण
आत्मन्	=	अप्प

इसी प्रकार स्त्रीलिंग में आकारान्त और इकारान्त शब्दों ह्रस्व करने की प्रवृत्ति है।

संस्कृत	=	अपभ्रंश
वीणा	=	वीण
वेणी	=	वेणि
मालती	=	मालइ
प्रतिमा	=	पडिम
पूजा	=	पुज्ज
सिकता	=	सियय
क्रीडा	=	कील

आकारान्त को इकारान्त भी कर देते हैं।

[illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible]

दशानुख = दहमुहु
राम = रामु
देव = देवु

(२) अपभ्रंश में कर्ता के एकवचन' में अकारान्त संज्ञा
अंतिम 'अ' को पुलिंग में 'ओ' विकल्प से होता है।

'जो मिलइ सहि सो सोक्खइं ठाइं' में जो सो' रूप इसी नि
के अनुसार हुए, दूसरे पक्ष मे जु सु भी हो सकते हैं। यह नि
पुलिंग शब्दों में लगता है, अतः नपुंसकलिंग में ओकारान्त
नहीं होते।

(३) अपभ्रंश में करण' के एक वचन में अ को 'ए' हो
है, दइए—

(४) अपभ्रंश मे करण' के एक वचन में 'ण' अ
अनुस्वार दोनों होते हैं इस प्रकार तीन रूप बनते हैं।

देवे, देवें, देवेण, (देविण)

(५) करण और अधिकरण के बहुवचन' में हिं होता है-
देवहिं।

(६) करण के बहुवचन' मे विभक्ति परे रहते—संज्ञा
प्रकार विकल्प मे होता है। 'देवेहिं'

(७) अपादान' के एक वचन मे 'हे और हु' ये दो प्रत्
होते है [illegible] [illegible] [illegible] मे

[illegible] के [illegible] मे [illegible] है [illegible] [illegible]

(९) सम्बन्ध[1] के एक वचन में 'सु' 'हो' स्सु होते हैं। देवसु देवहो देवस्सु=देव का।

(१०) सम्बन्ध[2] के बहुवचन में (हं) होता है। देवहं= देवों का।

(११) अधिकरण[3] के एक वचन में इ और ए आदेश होते हैं देवि, देवे,

(१२) करण[4] और अधिकरण के बहुवचन में 'हिं' होता है। देवहिं।

(१३) कर्ता[5] और कर्म की विभक्तियों का अपभ्रंश में विकल्प से लोप हो जाता है।

देव, देवा,

(१४) सम्बन्ध[6] की विभक्ति का भी विकल्प से लोप होता है गय कुम्भहं=गजों के गण्डस्थलों को।

(१५) सम्बोधन* के बहुवचन में विभक्ति का लोप न होकर उसके स्थान में 'हो' आदेश होता है:

'तरुणहो'

इस प्रकार अकारान्त पुलिंग शब्दों के विभिन्न विभक्तियों में निम्न रूप हुए'

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	देव देवा देवु देवो,	देव देवा
कर्म	देव देवा देवु	देव देवा
करण	देवे देवें देवेण (देविण)	देवहिं देवेहिं
अपादान	देवहे, देवहु	देवहुँ

१ ङसः सुहोस्सवः २ आमोहं ३ ङिनेच ४ भिस्सुपोर्हि ५ स्यम्जस्शसांलुक् । ६ षष्ठ्याः * आमंत्र्येजसोहोः ।

(७) सम्बन्ध† के बहुवचन में 'हं' और 'हुं' होते हैं।
गिरिहं, गिरीहुं, गिरि, गिरी,
(८) अधिकरण के एकवचन में 'हि' होता है।
गिरिहि।
(९) अधिकरण‡ के बहुवचन में 'हुं' आदेश होता है।
गिरिहुं।
(१०) इकारान्त शब्दों के सम्बोधन में केवल अकारान्त शब्द के उ और ओ वाले रूप नहीं होते।
गिरि गिरी; गिरि गिरिहो

अकारान्त शब्दों की अपेक्षा इकारान्त और उकारान्त शब्दों के रूपों में बहुत कमी है, कर्ता और सम्बन्ध के एकवचन के रूप इनमें कम हैं। अन्य विभक्तियों में भी समानता है। जैसे—

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	गिरि गिरी	गिरि गिरी
कर्म	गिरि गिरी	गिरि गिरी
करण	गिरिएँ गिरिण गिरिं	गिरिहिं
अपा०	गिरिहे	गिरिहुं
सम्बन्ध	गिरि गिरि	गिरिहं गिरिहुं
अधि०	गिरिहि	गिरिहुं
स्म्बो०	गिरि गिरी	गिरि गिरी गिरिहो

अंतिम 'इ' को दीर्घ करने से सभी विभक्तियों में एक रूप बनता है। यह अपभ्रंश की सामान्य प्रवृत्ति है, जो सभी काम करती है।

† हुँ चेदुदया ‡ भ्यम् जश्शसो लुंक।

नपुंसक लिंग

अपभ्रंश के नपुंसक लिंग में कर्ता और कर्म के रूपों में कुछ भिन्नता है, शेष विभक्तियों में पुलिंग शब्दों के रूपों की तरह रूप समझना चाहिए।

(१) कर्ता और कर्म के बहुवचन में नपुंसकलिंग में 'इं' आदेश होता है।

कमलु, कमलइं, कमलाइं,

(२) क प्रत्ययान्त शब्दों को, कर्ता और कर्म के एक वचन में उं आदेश होता है।

तुच्छकं = तुच्छउं

इस प्रकार नपुंसक लिंग में रूप हुए—

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	कमलु, कमला, कमल,	कमलइं कमलाइं,
कर्म	कमलु, कमला, कमल,	कमलइं कमलाइं

शेष विभक्तियों में पुलिंग की तरह रूप चलते हैं।

स्त्रीलिंग

अपभ्रंश में स्त्रीलिंग शब्दों को कर्ता और कर्म के बहुवचन में उ और ओ आदेश होते है

[illegible] — मुद्धाउ मुद्धाओ

[illegible] के एक वचन में [illegible] आदेश होते हैं

[illegible]

[illegible] के [illegible] वचन में

[illegible]

(४) अपादान¹ और सम्बन्ध के एक वचन में 'हे' आदेश होता है।

मुद्धहे

(५) अपादान¹ और सम्बन्ध के बहुवचन में 'हु' आदेश होता है।

मुद्धहु

(६) अधिकरण² के एक वचन में 'हि' आदेश होता है।

मुद्धहि,

(७) अधिकरण के बहुवचन मे 'हिं' होता।

मुद्धहि

इस प्रकार निम्न रूप हुए।

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	मुद्ध मुद्धा	मुद्ध मुद्धा मुद्धाउ मुद्धाओ
कर्म	,, ,,	,, ,, ,, ,,
करण	मुद्धए	मुद्धहि
अपा०	मुद्धहे	मुद्धहुं
सम्बन्ध	,,	,,
अधि०	मुद्धहि	मुद्धहि
सम्बो०	मुद्ध मुद्धा	मुद्ध मुद्धा मुद्धहो मुद्धाहो

कर्ता और कर्म के रूपों की तरह शेष विभक्तियों में दीर्घ रूप भी होते हैं जैसे करण के एकवचन में मुद्धाए और बहु वचन में मुद्ध [illegible]

[illegible] 'आ' में [illegible] इकारान्त और उकारान्त शब्दों [illegible] नहीं मिलेगा। नपुंसक

कर्म	०	०
करण	एं, ए, ँ,	हिं
अपादान	हे	हुँ
सम्बन्ध	०	० हं हुं
अधि०	हि	हुं
सम्बोधन	०	० हो

नपुंसक लिङ्ग के विभक्तिचिन्ह

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	०	० इं
कर्म	०	० इं

शेष पुलिङ्ग की तरह।

स्रीलिङ्ग

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	०	० उ, ओ
कर्म	०	० ,, ,,
करण	ए	हिं
अपा०	हे	हु
सम्बन्ध	हे	हु
अधि०	हि	हिं
सम्बोधन	०	० हो

ऊपर यह उल्लेख किया जा चुका है कि अपभ्रंश में हलन्त और उकारान्त शब्दों को अकारान्त बनाने को व्यापक प्रवृत्ति है। ऋकारान्त 'शब्द' को भी उकारान्त या अकारान्त बना लिया जाता है। उदाहरण के लिए पितृ शब्द के सात-आठ रूप सम्भव है —पिअ पिट पिउ, पिउ, पिदु, पिअर और पिउर। इनमें

पिउ पिदू और पिअर के देव शब्द की तरह रूप समझना चाहिए, और शेष के गिरि की तरह। यदि ऋकारान्त शब्द नपुंसकलिंग का है तो नपुंसक के रूपों की तरह रूप चलेंगे।

पूषन् (सूर्य) आदि शब्दों के रूप, पूस या पूसण प्रकृति बनाकर चलते हैं।

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	पूसु, पूसो, पूस, पूसा	पूस पूसा
	पूसणु पूसणो, पूसण	
कर्म	पूसणा	पूसण पूसणा

शेष रूप, देव शब्द की तरह समझना चाहिए।

सर्वनाम

(Pronoun)

(द्वितीय पुरुष)

तुम (युष्मद्) शब्द के अपभ्रंश में निम्नरूप होते हैं।

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	तुहुं	तुम्हे तुम्हइं
कर्म	पइं, तइं,	" "
करण	" "	तुम्हेहिं
अपादान	तउ तुज्झ तुध्र	तुम्हहं
सम्बन्ध	" " "	"
अधिकरण	पइं तइं	तुम्हासु

(प्रथम पुरुष)

मैं (अस्मद्) के रूप।

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	हउं	अम्हे अम्हइं
कर्म	मइं	
करण		अम्हेहिं
अपादान	मइ मज्झ	अम्हहं
सम्बन्ध		
अधिकरण	मइं	अम्हासु

तुम और मैं के रूपों में 'अम्ह' और 'तुम्ह' शब्द अपभ्रंश में
सामान्यरूप से मिलता है, बहुवचन के रूपों में अधिक विरूपता
है। कर्ता कर्म करण और अधिकरण के एक वचन में दोनों
के एक से रूप होते हैं, अपादान और सम्बन्ध के दोनों
के रूप समान हैं कर्ता और कर्म के बहुवचन के रूप भी समान।

(अन्य पुरुष)

सव्व = सर्व, सब (संस्कृत)

अपभ्रंश• में सर्व शब्द को विकल्प से 'साह' आदेश होता है

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	सव्वु सव्वो सव्व	सव्वे सव्व सव्वा
कर्म	सव्वु सव्व सव्वा	सव्व सव्वा
करण	सव्वेण सव्वें	सव्वेहि [सव्वेसि]
अपा०	सव्वहां सव्वाहां	सव्वहुं सव्वाहुं
सम्बन्ध	सव्वसु, सव्वस्सु सव्वहो सव्व, सव्वा	सव्वहं सव्व सव्वा
अधि०	सव्वहिं	सव्वहिं

इसी प्रकार 'साह' के रूप समझना चाहिए। 'साह' आदेश
अपभ्रंश में ही होता है, प्राकृत में नहीं।

सर्वनाम शब्दों के रूपों में अपादान के एकवचन में, 'हां',
और अधिकरण के एकवचन में 'हिं' आदेश होते हैं, शेष रूप
प्राय अकारान्त पुलिङ्ग शब्दों की तरह होते हैं।

नपुंसक लिंग

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	सव्वु सव्व [illegible]	सव्वइं सव्वाइं
कर्म		

[illegible]

शेष पुलिङ्ग की तरह। स्त्रीलिङ्ग में भी आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द की तरह रूप होते हैं।

यह (एतद्)

यह (एतद्)[1] शब्द के लिए, अपभ्रंश के तीनो लिंगों में क्रमशः कर्ता और कर्म[2] के एकवचन में 'एह एहो एहु' और बहुवचन में[3] 'एइं'—आदेश होता है।

		एकवचन	बहुवचन
पुलिंग—	कर्ता	एहो	एइ
	कर्म	,,	,,
स्त्रीलिंग—	कर्ता	एह	एईउ एहाउ
	कर्म	,,	,, ,,
नपुंसकलिंग—	कर्ता	एहु	एइइं एईइं एहाइं
	कर्म	,,	,, ,,

शेष रूप 'सव्व' की तरह जानना चाहिए। वह (अदस्) शब्द के अर्थ में अपभ्रंश में कर्ता और कर्म केवहुवचन में 'ओइ' आदेश होता है—

"वड्डा घर ओइ"=वे बड़े घर

सर्वनाम से बननेवाले विशेषण (प्रत्येक के दो रूप बनते हैं)

(१) परिमाणवाचक विशेषण

जितना	जेवडु	जेत्तुल[4]
कितना	केवडु	केत्तुल

[illegible] ३ अदस और [illegible]

[illegible] होते हैं।

केत्तहे = कहां, तेत्तहे = तहां

जहि कहिं तहिं—आदि सप्तम्यन्तरूप भी अव्यय के समान प्रयुक्त होते हैं।

समय वाचक अव्यय

जब तक—जामहि,[1] जाम, जाउं

तब तक—तामहिं, ताम, ताउं

तब से (ततः) = तो

रीति वाचक अव्यय

जिस प्रकार—जेम,[2] जिम, जिह, जिध।

किस प्रकार—केम, किम, किह, किध।

तिस प्रकार—तेम, तिम, तिह, तिध।

अपभ्रंश के विशेष कार्य

अपभ्रंश[3] में अनादि में स्थित असंयुक्त 'म' को विकल्प से अनुनासिक 'व' होता है।

कमलु = कवलु

भमरु = भवँरु

संयुक्त अथवा आदिमें रहने पर नहीं होता, जैसे जम्मु और मयणु। लाक्षणिक प्रयोगों में भी यह नियम लगता है जिम = जिवँ, तिम = तिवँ, जेम = जेवँ, तेम = तेवँ इत्यादि।

सम्बन्धीसर्वनाम—जो (यत्)

		एकवचन	बहुवचन
कर्ता	पुं०	जु, जो	जे
	स्त्री०	जा	जाउ

[illegible]

[illegible]

	स्त्री० ताहं, तहे,[1]	ताहिं
सम्बन्ध	पु० तासु तहो।	तहु
	{ तहि तसु { तहु तहि	
	स्त्री० { तिह { ताहि तहे	ताहि
अधि०	पु० तहि, तहि	तहिं
	स्त्री० तहि तहि	ताहि

प्रश्नार्थ सर्वनाम—क्या, कौन (किम्)

किम् के लिए– अपभ्रंश में[2] काइं और कवण आदेश विकल्प से होते हैं। इस तरह– क, काइं और कवण इन तीन से विभक्ति लगाई जा सकती है। क के रूप

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता–कर्म	पु० को कु	के
	स्त्री० का क	कायउ काउ
	नपु० किं	काइं
करण	पु० केण कइं	केहिं
	स्त्री० काइं काए	केहि काहि
अपा०	पु० कउ किहे कहा	कहु
	स्त्री० काहे	काहि
सम्बन्ध	पु० कहो कहु कस्स कासु	काह
	स्त्री० काहि काहि	काहि
अधि०	पु० कहि कहि	कहि
	स्त्री० काहि	काहि

१ स्त्रियाडहे' २ किम काइं कवणौ वा।

कवण के रूप सव्व की तरह, और काइं के इकारान्
तरह चलते हैं ! किं और काइं का अव्यय की तरह भी प्र
होता है।

यह

यह (इदम्) को अपभ्रंश में "आय"[१] होता है। तीन
लिङ्गों में 'सव्व' की तरह आय के रूप होते हैं केवल नपुंसक लि
में कर्ता और कर्म के एक वचन में[२] 'इमु' होता है।

पुलिंग

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	आयु आयो आय आया	आये आय आया
कर्म	आयु आय आया	आय आया

नपुंसक

कर्ता	इमु	आयाइं आयइं
कर्म	इमु	" "

अव्यय

(६) अपभ्रंश में[१] एवं (ऐसा ही) परं (पर) समं (समान) ध्रुव (निश्चय ही) म (निषेधार्थक) मनाक् (थोड़ा) शब्दों के स्थान में क्रमशः एम्व पर समाणु ध्रुवु म और मणाउं आदेश होते हैं जैसे—

[illegible]

कोर्ति (मिलती है)। चञ्चलु जीविउ ध्रुवु मरणु = जीवन क्षणिक है और मरण निश्चित है। इत्यादि।

अपभ्रंश में[1] किल, (प्रसिद्धि के अर्थ में) अथवा, दिवा, (स्वर्ग) सह (साथ) और नहि (नहीं) के स्थान में क्रमशः किर अहवइ दिवे सहुँ और नाहिं आदेश होते हैं।

किर खाई न पिअइ किर = किल

अहवइ न सुवंसह एह खोडि = अहवइ = अथवा, दूसरा रूप अहवा भी होता है।

अहवा न जि नियाणु = अहवा = अथवा

दिवें दिवें गंगाण्हाणु = दिवे दिवे = दिवा

जउ पवसंते सहुँ न गयउ = सहुँ = सह

एक्कवि कणिअ नाहिं ओहट्टइ = नाहिं = नहि (एक भी कण कम नहीं होता)

(२) अपभ्रंश में क्रमशः निम्न शब्दों को निम्न आदेश होते हैं।

(पीछे) पश्चात्[2] = पच्छइ—पच्छइ होइ विहाणु

(ऐसे ही) एवमेव = एम्वइ—एम्वइ सुरउ समत्तु

(ही) एव = जि—एक्कु जि

(इस समय) इदानीं = एम्वहिं—'एम्वहिं राहपओहरहं जं भावइ त होउ'

(?) प्रत्युत पच्चलिउ—अहु पच्चलिउ सो मरइ जासु न सामइ कलिहु

[illegible]

(३) (यहां से) इतः = एत्तहे—एत्तहे मेह पिअन्ति जलु

(४) अपभ्रंश में विपण्ण (खिन्न) उक्त और वर्त्म (मार्ग) शब्दों के स्थान में क्रमशः वुन्न वुत्त और विच आदेश होते हैं।

विपण्ण = वुन्नउ—एम्वइ वुन्नउ काइं ?

उक्त = वुत्त—मइं वुत्तउं ?

वर्त्म = विच—जं मणु विच्चि न माइ।

(५) अपभ्रंश में अधः स्थित रेफ का विकल्प से लोप हो जाता है प्रिय = पिउ, दूसरे पक्ष में 'प्रियेण' रूप भी होगा।

(६) अपभ्रंश में कहीं कहीं रेफ का आगम हो जाता है।

जैसे—व्यास = ब्रासु, रेफ का आगम न होने पर वासु रूप भी बनता है।

(७) अपभ्रंश में आपद् विपद् और सम्पद् शब्दों के 'द्' के स्थान में विकल्प से 'इ' होती है = आवइ, विवइ, संवइ। दूसरे पक्ष में 'सम्पद रूप सिद्ध होता है। 'गुणहिं न सम्पय कित्ति' पर'।

(८) अपभ्रंश में परस्पर शब्द के आदि में 'अ' का आगम होता है 'अवरोप्पर' = परस्पर = आपस में।

(९) अपभ्रंश में अन्यथा शब्द के स्थान में 'अनु' आदेश विकल्प से होता है। अनु = नहीं तो। दूसरे पक्ष में 'अन्नह' रूप होगा

[illegible]

[illegible]

(११) अपभ्रंश[1] में ततः और तदा, इनके स्थान में 'तो' आदेश होता है।

'जइ भग्गा पारक्कड़ा तो सहि मज्झु पियेण'

यदि दूसरे लोग (शत्रु) नष्ट हुए तो सखि मेरे प्रिय के द्वारा।

(१२) अपभ्रंश[2] में अन्यादृश को अन्नाइस और अवराइस आदेश होते हैं अन्नाइसो, अवराइसो = दूसरे जैसा,

(१३) अपभ्रंश[3] में प्रायः शब्द के बदले में प्राउ, प्राइव प्राइम्व और पगिम्व आदेश होते हैं।

अन्नु जि प्राउ विहि = प्रायः दूसरा ही विधाता है। "प्राइव मुणिहं वि भंतड़ी" प्रायः मुनियों को भी भ्रांति है।

तादर्थ्य[4] = (के लिए के अर्थ में) अपभ्रंश में केहिं तेहिं रेसिं रेसिं और तणेण ये पांच निपात होते हैं।

उदाहरण—तउ केहिं हउं खिज्जउं = तुम्हारे लिए मैं छीज रहा हूँ।

वड्डत्तणहो तणेण = बड़प्पन के लिए ?

अन्नहिं रेसिं = अन्न के लिए, इत्यादि

इवार्थ[5] (के समान) इस अर्थ में अपभ्रंश में नं नउ नाइ नावइ, जणि और जणु आदेश होते हैं।

नं मल्लजुज्झु ससिराहु करहिं = मानो ससि और राहु मल्लयुद्ध कर रहे हैं।

नउ जीवग्गलु दिण्णु = मानो जीवार्गल दिया।

थाह गवेसइ नाइ = मानो थाह खोज रही है इत्यादि।

[1] ततस्तदोस्तोः [2] अन्यादृशोन्नाइसावराइसौ [3] प्रायस प्राउ प्राइव प्राइम्व पग्गिम्वाः [4] तादर्थ्ये केहिं तेहिं रेसि रेसिं तणेणाः [5] इवार्थे [illegible]

(४) 'पुणु डालइं मोडन्ति' स्त्रीलिंग का नपुंसकलिंग रूप है। संस्कृत में विशेषण का लिंग और वचन, विशेष्य के अनुसार ही होता है अपभ्रंश में यह अनुशासन नहीं है.

'वुद्द विरहग्गि किलंत''

''गोरड़ी दिट्ठी मग्गु निअन्त''

इन अवतरणों में 'किलंत और निअन्त' स्त्रीलिंग के विशेषण होते हुए भी स्त्रीलिंग नहीं है, हिन्दी तत्सम विशेषणों में लिंग आवश्यक नहीं, जैसे—सुंदर लड़की। इत्यादि।

देशाः=देसइं

आरंभान्=आरम्भइं

कटाक्षान्=कडक्खइं

इन उदाहरणों में संस्कृत के पुलिङ्ग शब्दों का अपभ्रंश में नपुंसक लिङ्ग में प्रयोग हुआ है। अपभ्रंश में लिङ्ग का अनुशासन नहीं है, यह प्रवृत्ति आधुनिक हिन्दी में बहुत कुछ अपभ्रंश से आई।

विभक्त्यर्थ

प्राकृत और अपभ्रंश में चतुर्थी विभक्ति नहीं है। उसके स्थान षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है जैसे—''आरम्भह सम्भीसड़ी [illegible] यहाँ आरम्भह में चतुर्थी की जगह षष्ठी [illegible] [illegible] 'वन्दनहे' के अर्थ में [illegible] [illegible] षष्ठी होता है जैसे— [illegible] में [illegible] में षष्ठी [illegible] करते हैं [illegible]

की जगह षष्ठी का प्रयोग है। उल्लिखित उदाहरणों से स्पष्ट है कि षष्ठी बहुत व्यापक विभक्ति है। इसके अतिरिक्त कई स्थलों में द्वितीया और तृतीया के बदले में सप्तमी आती है, तथा पंचमी के स्थान में तृतीया और सप्तमी। इसी प्रकार सप्तमी की जगह कभी-कभी द्वितीया की विभक्ति का व्यवहार होता है।

आख्यात

वैदिक और ब्राह्मणों की भाषा में आख्यात (क्रिया) का अधिक प्रयोग था। संस्कृत में, नाना प्रकार वचन और आत्मनेपद आदि के भेद से क्रिया के अनेक रूप होते हैं। आगे चलकर क्रिया रूपों में सरलता हुई। दस की जगह पांच ही गण मिलने लगे, द्वि वचन का लोप, परस्मैपद और भ्वादिगण का प्रभाव पड़ा, लुट और लिट कम हुए। यह पाली युग की बात है। प्राकृत काल में और सरलीकरण हुआ। महाराष्ट्री प्राकृत में गणों का एकदम अभाव है, उसमें भ्वादिगण की व्यापकता है। कर्ता, कर्म और प्रेरणार्थक रूपों की बहुलता होने लगी। कालों में वर्तमान विधि आज्ञा और भविष्य ही रह गए। अपभ्रंशयुग में आख्यात की यही स्थिति थी। कालों में कमी होने से कृदन्तों का प्रयोग बढ़ना अनिवार्य था। यह प्रवृत्ति संस्कृत में भी बाद में दिखाई देने लगी। अपभ्रंशयुग में आख्यात के रूप यद्यपि संयोगात्मक थे, फिर भी उनमें कमी होती गई। अपभ्रंश के वर्तमान में आख्यात और कृदन्त दोनों का प्रयोग होता है जब कि भूतकाल में केवल कृदन्त [illegible] अवश्य हैं कहीं-कहीं एक दो रूपों में [illegible] पड़ते हैं वह भी पुराने संस्कार के [illegible] वर्तमान [illegible] [illegible] हैं [illegible]।

जायगा प्रभृति क्रियारूपों में 'जा' सभी में है, उसमें विकृति नहीं आती। अपभ्रंश में स्थूल रूप से पाँच प्रकार की धातुएँ हैं।

(१) मूलधातु में उन धातुओं की गणना होती है जो देशज हैं और जिनके विकास में संस्कृतधातु का कुछ भी योग नहीं है आ० हेमचन्द्र ने तदयादीनां छोल्लादयः के अन्तर्गत धात्वादेश के रूप में ऐसी धातुओं का उल्लेख किया है। यहाँ तदय के स्थान में छोल्ल के आदेश का इतना ही अभिप्राय जान पड़ता है कि लोक में तदय के अर्थ में 'छोल्ल' धातु का व्यवहार होता है। वस्तुतः इस प्रकार की धातुएँ अपभ्रंश की अपनी मूल सम्पत्ति हैं।

(२) सप्रत्ययधातु में उन धातुओं की गणना होती है जिनका विकास प्रत्यय-सहित संस्कृत क्रिया-रूप से हुआ। उपविष्ट= विट्ठ=विट्ठइ, इत्यादि। हिन्दी का बैठना इसी से निकला।

(३) विकरणधातु उन धातुओं को कहते हैं जिनका विकास संस्कृत धातु की साध्यमान प्रकृति से हुआ है।

यथा=जिणइ, सुणइ, कुणइ, गामइ, गच्छइ,

(४) नामधातु=जैसे—जयजयकारइ दुक्कारइ, नमइ, पयासइ, अपभ्रंश में नामधातु का अधिक प्रयोग है, आधुनिक हिन्दी, इस दृष्टि से दरिद्र है।

(५) ध्वनिधातु=अनुकरण के आधार पर धातु की कल्पना कर ली जाती है।

थुथुक्कइ दुदुल्लइ गगगगइ गुमगुमइ,

धातुरूप

[illegible]

[illegible]

भण् + अ + इ = भणइ = कहता है।
पढ + अ + इ = पढइ पढ़ता है।
इनमें 'अ' को विकरण समझना चाहिए।
(२) उकारान्त धातुओं को 'अव' होता है।
रु = रवइ = रोता है।
सु = सुवइ = सोता है।
(३) ऋकारान्त धातुओं के अंतिम ऋ को 'अर' देते हैं।
धृ = धर = धरइ = धरता है।
मृ = मर = मरइ = मरता है।
हृ = हर = हरइ = हरता है।
उपान्त्य ऋ को अरि होता है।
कृष = करिसइ
मृष = मरिसइ
(४) ईकारान्त धातुओं को 'ए' होता है।
नी = नेइ = ले जाता है।
उड्डी = उड्डेइ = उड्डीयते = उड़ता है।
(५) उपान्त्य स्वर को दीर्घ कर देते हैं।
रुष = रूसइ = रुष्ट होता है।
तुष — तूसइ = तुष्ट होता है।
पुष = पूसइ पुष्ट होता है।
(६) एक स्वर के स्थान में दूसरा स्वर आ जाता है।
चिन = [illegible] चुनइ चुनता है
रु = रुवइ [illegible] [illegible] है
(७) धातु के अन्त्य [illegible] है
फुटइ = फुट्टइ [illegible] है

तुद्=तुट्टइ=तोड़ता है।
लग्=लग्गइ=लगता है।
सक्=सक्कइ=सकता है।
कुप=कुप्पइ=कुपित होता है।

(८) संस्कृत (द्य) का ज्ज होता है।
संपद्यते=संपज्जइ=संपादित होता है।
खिद्यते=खिज्जइ=खिन्न होता है।

रुपावली

साधारणतया, धातु से[१] सामान्य वर्तमान में तृतीय पुरुष के बहुवचन में 'हिं' प्रत्यय विकल्प से होता है—जैसे करहिं, सहहिं, दूसरे पक्ष में "करंति" रूप भी होता है।

तृतीयपुरुष[२] एकवचन में 'इ' अथवा दि लगता है।

कुणइ, करदि, करइ,

द्वितीयपुरुष[३] के एकवचन में हि विकल्प से होता है—करहि दूसरे पक्ष में 'करसि' भी हो सकता है।

द्वितीयपुरुष के बहुवचन में 'हु' होता है 'इच्छहु' 'मग्गहु' पक्षान्तर में इच्छह भी होता है।

प्रथमपुरुष[४] के एकवचन 'उं' होता है, करउं, धरउँ, दूसरे पक्ष में 'करिमि' होता है।

प्रथमपुरुष[५] के बहुवचन में 'हु' होता है, लहहुं जाहुं। पक्षान्तर में—लहमु भी होता है।

इस प्रकार वर्तमान काल में निम्नरूप होते हैं।

[१] [illegible] त्यस्यान्त्यत्रयस्य हिः।

[२] [illegible]।

आधुनिक हिन्दी की मुख्य प्रवृत्ति आकारान्त है यह प्रवृत्ति अपभ्रंश में भी विरल नहीं थी।

'स्वराणां स्वराः प्रायोऽपभ्रंशे' इस नियम के अनुसार अपभ्रंश में इकारान्त और उकारान्त शब्दों के अकारान्तरूप हो जाते हैं। जैसे—बाहु शब्द का बाह और बाहा, अपभ्रंश उकार बहुला थी, पर उसकी प्रभाव सीमा में अकारान्त शब्दों की भाषा भी थी, और उसके शब्द अपभ्रंश में प्रचुरता से आते थे, 'भल्ला हुआ जु मारिया बहिणी हमारा कन्तु' आदि उदाहरणों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है। स्पष्ट है, कि यह प्रवृत्ति हिन्दी में उर्दू से नहीं आई।

(२) आचार्य हेमचंद ने अपभ्रंश में प्रयुक्त होने वाले ह्रस्व एकार और ओकार का उल्लेख किया है। खड़ी बोली में यद्यपि इनका व्यवहार नहीं है पर उसकी कई बोलियों में ह्रस्व एकार ओकार पाए जाते हैं। अपभ्रंश से उनका क्रम ठीक बैठ जाता है। आधुनिक हिन्दी में ह्रस्वादेश की प्रवृत्ति है, अपभ्रंश में भी यह प्रवृत्ति थी, तेएा का तिएा इसी का सूचक है।

(३) कारक रचना में आधुनिकहिन्दी वियोगावस्था में है जब कि अपभ्रंश संयोगावस्था में थी। तो भी उसमें वियोगावस्था के छिटपुट उदाहरण मिलते हैं। सम्बन्धी के अर्थ में होने वाले केर और तरा प्रत्यय तथा तादर्थ्य के बोधक शब्दों का प्रयोग यही सूचित करता है, प्राकृतों की अपेक्षा अपभ्रंश में विभक्तिचिह्न कम हैं कर्त्ता कर्म और सम्बन्ध की विभक्तियों का लोप व्यापक था। अवहट्ट में यह प्रवृत्ति और बढ़ी, आधुनिक भाषाओं की वियोगावस्था के लिए—यह स्थिति पूर्वपीठिका का काम करती है।

सर्वनाम हिन्दी के अधिकांश सर्वनामों का सम्बन्ध अपभ्रंश से सीधा जोड़ा जा सकता है। मइ=मैं, अम्हे=हम, तुम्ह=

विरहाग्नि में तड़पती हुई,। यहाँ नियमानुसार किलकन्ती म
होना चाहिए था।

(८) पूर्वकालिक और क्रियार्थकक्रिया के रूपों में पुरानी
और नई हिन्दी में अपभ्रंश का प्रभाव है। पुरानी हिन्दी के
उठि चलि करि आदि रूपों में अपभ्रंश का 'इ' प्रत्यय स्पष्ट दिख
पड़ता है, करिउ, चलिउ, आदि भी 'इउ' से ही बने हैं, अपभ्रंश
में पूर्वकालिक क्रिया के लिए आठ प्रत्यय हैं। उनमें इ और
भी हैं। हिन्दी की क्रियार्थकक्रिया में चलना करना आदि में
अपभ्रंश क्रियार्थक क्रिया का 'अण' साफ झलकता है। चलण
करण अपभ्रंश के रूप हैं, 'ण' का न और आकारान्त प्रयोग करना
हिन्दी को अपनी प्रवृत्ति है, अतः चलना आदि रूप बनते हैं।
पूर्वकालिक क्रिया में कर लगता है, जैसे—खाकर उठकर आदि।
यह रूप अपभ्रंश 'करि' से ही निकला जान पड़ता है। इकारान्त
का अकारान्त होना हिन्दी के स्वभाव के अनुकूल है।

(९) आधुनिक हिन्दी के क्रिया रूपों में भूत और वर्तमान
कृदन्त और सहायक क्रिया का प्रयोग होता है, अपभ्रंश
वर्तमान में कृदन्त और तिङ् दोनों का प्रयोग था। पर भूत के लिए
कृदन्त का ही प्रयोग होता था। जैसे—"जं मह्‌ दिण्णा दिहडा
"नाइ सुवण्ण रेह कसवट्टइ दिण्णी" इत्यादि। आधुनिक हि
में लिङ्ग के आने की कहानी इसी प्रवृत्ति से जुड़ी हुई है। हि
'कीजिए दीजिए' में अपभ्रंश के किज्जइ दिज्जइ, की पूरी समा
है। इसके अतिरिक्त कई हिन्दी क्रियाएं अपभ्रंश की मूल क्रिया
से बनी हैं संस्कृत और प्राकृत से उनका सम्बन्ध जरा भी नहीं

(१०) पिछली प्राकृत परम्परा की अपेक्षा अपभ्रंश का त
शब्दों और व्यञ्जनप्रयोग की ओर अधिक झुकाव रहा

यह कर्मणि प्रयोग है। इसी मइं से मैं का विकास हुआ। डाक्टर सुनीतकुमार 'मैं' के 'अनुनासिक' में 'एन' का प्रभाव मानते हैं। संस्कृत और प्रकृत का कर्म वाच्य हिन्दी में कर्तृ वाच्य बन जाता है। अतः 'मैं' का कर्तरि प्रयोग असम्भव बात नहीं।

मुझ—अपभ्रंश में अपादान और सम्बंध के एक वचन में 'मह्नु और मज्झु' रूप होते हैं,—मज्झु से तुज्झ के सादृश्य (Anology) पर हिन्दी मुझ निकला है। पुरानी हिन्दी में 'मझ' रूप भी उपलब्ध है।

हम—अपभ्रंश में कर्ता और कर्म के बहु वचन में 'अम्हे अम्हइं' रूप बनते हैं! अम्हे से आदि 'अ' का लोप और वर्णविपर्यय के द्वारा 'हम' रूप सिद्ध होता है। संस्कृत के 'वयं' से हिन्दी के 'हम' का कोई सम्बध नहीं।

हौं—कर्ता के एक वचन के 'हउं' से निकला है, ब्रज में इसका इसी अर्थ में प्रयोग खूब उपलब्ध है।

'तूं'—का विकास 'तुहं' और संस्कृत त्वम् से माना जा सकता है, 'तुहं' में 'ह' का लोप और संधि करने से तूं बनता है, अथवा 'त्वम्' के 'व' का सम्प्रसारण करके तुम् और उससे फिर तूं रूप हुआ!

तैं—ब्रज का तैं सीधे अपभ्रंश के तइं से निकला है।

तुम—का सम्बंध तुम्हे से हैं। यह अपभ्रंश के कर्ता और कर्म के बहु वचन का रूप है। संस्कृत के 'यूयं' से इसका कोई सम्बध नहीं।

तुझ—अपभ्रंश के अपादान और सम्बध के एक वचन में 'तुज्झ रूप होता है, इसी तुज्झ से 'तुझ' रूप निकला।

हमारा तुम्हारा—सम्बध विशेषण के अर्थ में, युष्मत् और

'तं बोल्लिअइ जु निव्वहइ', "जो मिलइ सोक्खहं सो ठाउं"

कौन प्रश्नवाचक कौन, 'कवण' में सम्प्रसारण और गुण करने पर बनता है।

आप का विकास अप्पाणु से हुआ। "आपण पइ प्रभु होइअइ" में आप विद्यमान है।

जैसा तैसा ऐसा कैसा इन गुणवाचक सर्वनामों का विकास सीधा, अपभ्रंश के जइस, तइस, अइस और कइस से सम्बन्ध रखता है। संस्कृत यादृश् तादृश् ईदृश् और कीदृश् से इनका कोई सरोकार नहीं। अ+इ=ए होता है, तथा हिन्दी की प्रवृत्ति आकारान्त है, अत. जैसा प्रभृति रूप सिद्ध हो जाते हैं।

अङ्गरूप और परसर्ग

हिन्दी मे संस्कृत के बराबर कारक हैं पर उनमे संयोगात्मक रूप नहीं हैं, संस्कृत मे आठ कारक तीन लिङ्ग और वचन के भेद से एक शब्द के चौबीस रूप होते हैं, हिन्दी मे द्विवचन और नपुंसक लिङ्ग का अभाव है। द्विवचन, पाली प्राकृत और अपभ्रंश में भी नहीं था, संस्कृत में षष्ठी विभक्ति व्यापक थी, अन्य कारकों का भी यथासंभव आपस में विनियम होता था, प्राकृतकाल में आकर यह प्रवृत्ति और बढ़ी, अपभ्रंश मे कर्ता कर्म और सम्बन्ध की विभक्तियों का लोप सामन्य बात थी, अवहट्ट काल में विभक्तियों का और भी ह्रास हुआ, विद्यापति ने कीर्तिलता में कुल आठ विभक्तियों का व्यवहार किया है, भाषाविज्ञानियों का कथन है कि विभक्तिरहित शब्दों का व्यापक प्रयोग होने से अर्थ में सन्देह होने लगा अत सज्ञा और सर्वनामों में ऊपर के शब्द जोडकर विभक्ति का काम लिया जाने लगा, इन्हें

में—अधिकरण का चिह्न है। संस्कृत मध्ये से मज्झे मज्झि, मर्हि, में, यही विकासक्रम ठीक है। सम्बंध को छोड़कर प्रायः सभी कारकों के परसर्ग, हिन्दी में अव्यय की तरह प्रयुक्त हैं।

का, के, की—हिन्दी के सम्बन्ध का चिह्न विशेष्याधीन है, अतः उसमें लिंग के अनुसार परिवर्तन होना स्वाभाविक है। भेद्य और विशेष्य में भेदक और विशेषण से काम चलाया जाता है।

'काले घोड़े दौड़ते हैं'

काला घोड़ा दौड़ता है।

इन उदाहरणों में व्याकरणिक लिंग है। 'राम का घोड़ा' दूसरों से अपना भेद करता है, अतः उसमें विशेषण है, यह विश्लेषण Logical है, पहला विशेषण है, और दूसरा भेदक। इस प्रकार सम्बंध के विशेष्यनिष्ठ होने से, उसमें लिंग आना स्वाभाविक है। राम की पुस्तक और राम का घोड़ा विशेष्यनिष्ठ होने से, इनमें लिंग वर्तमान है। इनका विकास बड़ा रोचक है। सम्प्रदान के अर्थ में प्राकृत में केरक और अपभ्रंश में केर और [illegible] प्रयुक्त होते हैं।

[illegible] ? [illegible] है ?

[illegible] ? [illegible] है ?

[illegible] उसमें [illegible] हुए हैं ? [illegible]

आदि कवियों ने इन रूपों का प्रयोग किया है भूत कृदन्त से विकास होने से ही, था थे थी रूप होते हैं। कुछ विद्वानों ने 'स्था' से इसका विकास माना है, पर यह ठीक नहीं।

गया गत इस भूतकृदन्त से बना है। त का लोप, य श्रुति और हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुसार दीर्घ करने पर 'गया' रूप सिद्ध होता है। ब्रज में गयो और अवधी में गयो रूप बनते हैं।

गा गे गी की व्युत्पत्ति विवाद ग्रस्त है। कुछ विद्वान् 'चलितुं गतः' से इनका विकास मानते हैं, पर यह असंगत इसलिए जान पड़ता है कि भूतकाल के क्रियारूप से भविष्य का बोध किसी प्रकार सम्भव नहीं है। प्राकृत और अपभ्रंश में भविष्य में 'ज्ज' का प्रयोग होता है, वर्तमान आज्ञा और विधि में भी इसका व्यवहार है। हमेज्ज=हमेगा।

'ज' और 'ग' का विनिमय होता है जैसे भाजना भागना, भीजना भीगना इत्यादि। इस नियम से एक 'ज' का लोप और दूसरे 'ज' को ग करने पर—हमेगा रूप बन जाता है। यद्यपि यह शुद्ध तिङ का रूप है, तो भी था थे थी आदि के सादृश्य पर गा गे गी रूप चल सकते। प्रस्तुत प्रक्रिया में विचारणीय यह है कि अपभ्रंश या प्राकृत में भविष्यकाल के अर्थ में 'ज्ज' वाले रूपों का प्रयोग कितना था। जहां तक अपभ्रंश का प्रश्न है उसमें भविष्यकाल में इस प्रकार के रूप बहुत कम प्रयुक्त हैं चलिहइ, चलिसइ वाले रूप ही अधिक प्रयुक्त हैं, कुछ भी हो, गा गे गी का विकास चिन्तनीय अवश्य है। ब्रज के चलिहै करिहै—आदि रूप चलिहइ के ही समान हैं। अवधी का 'चली' भी चलिहइ के 'ह' का लोप और संधि करने पर बनता है। चलब करब आदि रूप संस्कृत के चलितव्य=चलिअव्व=

शब्द कोष

अ

आइरिय }
आयरिय } = आचार्य

अग्ग = अग्र, आगे

अग्गि = अग्नि

अग्घ = अर्घ्य

अच्चब्भुअ = अत्यद्भुत

अच्चन्त = अत्यन्त

अज्जुत = अयुक्त

अज्ज = अद्य

अञ्चल = अंचल

अड्डवि = अटवी, पहाड़,

अत्थवण = अस्तमन

अन्तेउर = अन्तःपुर, रनवास

अद्ध = अर्ध, आधा

अप्पा = आत्मा

अब्भंतर = अभ्यन्तर भीतर

अन्तर = अन्तर

अमिय = अमृत

अवर = अपर, दूसरा

अवरोप्पर = परस्पर

अंसु = आंसु

अहिणव }
नूतन } अभिनव, नया

अहोरत्ति = अहोरात्र, दिनरात

अणत्थ = अनर्थ

अणज्ज = अनार्य

अच्छरिय = आश्चर्य

अच्छर = अप्सरा

अत्थइ = अस्ति

अणादर = अनादर

अनाह = अनाथ

अनुदिणु = प्रतिदिन

अत्थ = अर्थ

अण्णो }
अन्न } = अन्य

अत्थि = अस्ति, है

अधआर }
अधार } = अधकार, अंधेरा

ऊसास = उच्छ्वास

ए

एक्कमेक = एकमेक

एक्कलिय = एकली, एकाकिनी

ओ

ओली = आवली, पंक्ति

ओमार = उम्मार

ओह = ओघ

क

कइ = कति, कितने

कइ = कवि

कउ = कहा से

कक्कस = कर्कश

कक्ख = कक्ष

कज्ज = कार्य, (काज)

कज्जल = काजल

कडक्ख = कटाक्ष

कट्ठ = काष्ठ

कण्ण = कर्ण

कण्ह = कृष्ण

कव = कम

कवाण = कृपाण

कलिया = कलिका

कम्म = कर्म

कद्दम = कर्दम

काउरिस = कापुरुष

कारुण्ण = कारुण्य

कडिल्ल = कटिवस्त्र

कडाह = कड़ाई

कठिण = कठिन

कायर = कातर

किय = कृत

किलेस = क्लेश

काय = काक, कौआ

किरिया = क्रिया

किलन्त = क्लान्त

किसिय = कृशित

किसलय = कोंपल

कित्ति = कीर्ति

कीड = क्रीड़ा, खेल

किविण = कृपण

कुक्कुड = मुर्गा

कुविय = कुपित

कुक्खि = कुक्षि, कोख

[illegible]

[illegible]

[illegible]

ऊसास = उच्छ्वास
ए
एक्मेक = एकमेक
एक्कलिय = एकली, एकाकिनी
ओ
ओली = आवली, पंक्ति
ओसार = उत्सार
ओह = ओघ
क
कइ = कति, कितने
कइ = कवि
कउ = कहाँ से
कक्कस = कर्कश
कक्ख = कक्ष
कज्ज = कार्य, (कारज)
कज्जल = काजल
कडक्ख = कटाक्ष
कट्ठ = काष्ठ
कण्ण = कर्ण
कण्ह = कृष्ण
कत = कात
कप्पण = कृपाण
कलिय = कलिका
— = कथा

कम्म = कर्म
कद्दम = कर्दम
काउरिस = कापुरुष
कारण्ण = कारुण्य
कडिल्ल = कटिवस्त्र
कडाह = कड़ाई
कठिण = कठिन
कायर = कातर
किय = कृत
किलेस = क्लेश
काय = काक, कौआ
किरिया = क्रिया
किलन्त = क्लान्त
किसिय = कृशित
किसलय = कोंपल
कित्ति = कीर्ति
कीड = क्रीड़ा, खेल
किविण = कृपण
कुक्कुड = मुर्गा
कुइय = कुपित
कुक्खि = कुक्षि, कोख
कुडुम्ब = कुटुम्ब
कुपह = कुपथ
कुरुखेत्त = कुरुक्षेत्र
कुच्छ = किंचित्, थोड़ा

वय = वक
बहिणि = भगिनी
बार = द्वार
बारस = द्वादश
बरीस = वर्ष
बामण = वक्र
बिण्णि = दो
बोहि = बोधि
बाहिर = बाहर

भ

भग्ग = भग्न
भट्ठ = भ्रष्ट
भंडण = कलह
भत्त = भक्त
भभर } = भ्रमर
भसल }
भंति = भ्रान्ति
भल्लय = भद्रक
भविय = भव्य
भाणु = भानु
भायर = भाई
भिच्च = भृत्य
भुल्ल = भूला, भ्रान्त
भित्ति = दीवाल

म

मउड = मुकुट
मऊर = मयूर
मग्ग = मार्ग
मच्छर = मत्सर
मज्ज = मद्य
मज्झ = बीच
मट्टी = मिट्टी
मडय = मृतक
मडय = मंडप
मणुअ = मनुज
मणोरह = मनोरथ
मट्टु = गर्व
मंढ = मंद
मत्थय = मस्तक
मन्न = मान्य
मम्म = मर्म
मम्मण = मेरामन
मयगल = मदकल
मयरट्ट = वेश्या
मयरंद = मकरंद
मयराज = मृगराज
ममाण = श्मशान
महल्ल = वृद्ध

महण्णव = महामत
भाय
भाइय } भ्राता
मुट्ठि = मुष्टि
मुद्ध = मुग्ध
मोर = मयूर
महायण = महाजन
महुमास = मधुमास, वसन्त
माण = मान
मास = मांस
मिग = मृग
मिच्छा = मिथ्या
मुच्छ = मूर्छा
मित्त = मात्र
माहप्प = महात्म्य
मुत्ताहल = मुक्ताफल
मुणाल = मृणाल
मेह = मेघ
मेहुण = मैथुन
मोक्ख = मोक्ष
मोग्गर = मुद्गर
मोय = मोद
धणुहर = धनुर्धर
धन्न = धन्य
धम्म धन

धयवड = ध्वजपट
धर = धरा
धुआ = लड़की
धीरिम = धैर्य
धुत्त = धूर्त
धुव = ध्रुव
धूम = धुआं
धूसरिय = धूसरित

न

नइ = नदी
नट्ठ = नष्ट
नंदण = लड़का
नयर = नगर
नरय = नरक
नरिंद = नरेंद्र
नयल्ल = नवीन
नवहलिय = नवफलित
नाउं = नाम
नायमुद्द = नागमुद्रा.
नारियेर = नारियल
नास = नाश
निक्किय = निष्क्रिय
निक्कारण = निष्कारण
निच्चल = निश्चल
नेत्त - नेत्र

निद्ध = स्निग्ध
निद्धण = निर्धन
निद्द = निद्रा
निप्फल = निष्फल
निरवराह = निरपराध
निव्वाण = निर्वाण
निव्वित्ति = निवृत्ति
निसायर = निशाचर
नीसद्द = निःशब्द
नीसंदेह = निःसंदेह
नीसेस = निःशेष
नेउर = नुपुर
नेत्त = नेत्र
नेवत्थ = नेपथ्य
नेह = स्नेह
न्हाण = स्नान
गइन्द = गजेन्द्र
गरुअ = गरुक, गरीयस
गवक्ख = गवाक्ष
गहिर = गभीर
गाम = ग्राम
गिम्ह = ग्रीष्म
गुज्झ = गुह्य
[illegible]
[illegible]

गंथ = ग्रंथ
गय = गज
गयण = गगन
गरिट्ठ = गरिष्ठ
गह = ग्रह
गहण = ग्रहण
गाम = ग्राम
गुरुभार = गुरुभार

घ

घरवास = गृहवास
घोसण = घोषणा
घाय = घात
घरिणी = गृहिणी

च

चउत्थ = चतुर्थ
चक्क = चक्र
चाडुयार = चाटुकार
चम्म = चर्म (चमड़ा)
चंद = चन्द्र
चक्खु = चक्षु
चउव्विह = चतुर्विध
चंदलेह = चन्द्रलेखा
चारित्त = चारित्र
चिरयाल = चिरकाल

मोरा परहुम हँस विहँगम अलि गअ पव्वअ सरिअ कुरँगम
तुम्मह कारण रण्णभमंते को णहु पुच्छिअ मइं रोअंते ॥ ६ ॥
विक्रमोर्वशीय, चतुर्थ-अंक।

सरहपाद (कामरूप, आसाम)

जो णग्गा विअ होइ मुत्ति ता सुणह सियालह
लोमोप्पाटणे अत्थि सिद्धि ता जुवइ-णितंबह ॥ १ ॥
पिच्छी गहणे दिट्ठ मोक्ख ता मोरह चमरह
उंछ भोअणें होइ जाण ता करिह तुरंगह ॥ २ ॥
सरह भणइ खवणाण मोक्ख महु किंपि न भावइ
तत्तरहिअ काया ण ताय पर केवल साहइ ॥ ३ ॥

आचार्य देवसेन, (नवीं सदी, प्रथमार्ध, धारा, मालवा)

सावयधम्म

दुक्खु सुहियउ होउ जगि सुयणु पयासिउ जेण
अमिउ विसें वासरु तमिण जिम मरगउ कच्चेण ॥ १ ॥
संजम सील [illegible]
[illegible] ॥
[illegible]
अह आगाहिँ उहावियइं अवस न उट्ठइ धूउ ॥ ३ ॥
दय जि मूलु धम्मंघिवहु सो उप्पाड्डिउ जेण
दलफल कुसुमहं कवण कह आमिसु भक्खिउ तेण ॥ ४ ॥
वेसहिं लग्गइ धणियधणु तुट्टइ षंधउमित्तु
मुषइ एह सव्वह गुणह वेसाधरि पइसंतु ॥ ५ ॥
परतिय वहुवंधण पर ण अण्णु वि णरयणिसोणि
घारइ ण पर करइ वि पावह हाणि। ॥ ६ ॥

मंचहि गुणवयणं कुमहि मेल्लि मङ्गिनउ नेम
मुह मोडइ मणहत्थियउ संजमभरलस पेम
सत्तु वि महुरइं उवसमइ सयल वि जिय वसि हुंति
चाइ कवित्तें पोरिसइं पुरिसहु होइ ण किन्ति ॥ २० ॥
अण्णाणं आयंति जिय आयइ धरण ण जाउ
उम्मग्गें चल्लन्तयहं कंटइं भज्जइ पाउ ॥ २ ॥
अण्णाएं थलियहं वि रहइ, किं दुग्घलहं ण जाइ
जहिं वाएं णवंति गय तहि कि सूणो ठाइ ॥ २२ ॥
अण्णाएं दालिद्दियहं ओहट्टइ णिव्वाहु
लुग्गउ पायपसारणइं फाटइ को संदेहु ॥ २३ ॥
दुल्लहु लहि मणुयत्तणउ भोयहं पेरिव जेण
लोहकज्जि दुत्तरतरणि णाय वियारिय तेण ॥ २४ ॥

'सायधम्म दोहा'

आचार्य पुष्पदन्त (नवीं सदी मान्यखेट दक्खिन)

सरस्वती वंदना

दुविहालंकारें विप्फुरंति लीलाकोमलइं पयाइं दिंति
महकव्वणि हेलाए संचरंति सव्वइ विण्णाणइं संभरंति
णीसेस देस भासउ चवंति लक्खणइं विसिट्ठइ दक्खवंति
अइरुंदछंदमग्गेण जंति पाणेहि मि दह पाणाइं लेंति
णवहिं मि रसेहि संचिज्जमाण विग्गहतएण णिरु सोहमाण
चउदह पुव्विल्ल दुवालसंगि जिण वयण विणिग्गय सत्तभंगि
वायरणवित्ति पायडियणाम पसियउ महु देवि मणोहिराम
सिरिकण्हराय करयलि णिहिय असिजलवाहिणी दुग्गयरि
धवलहरसिहरि हयमेहउलि पविउल मण्णखेड णयरि

खंचहि गुरुवयणं कुसहिं मेल्लि मदिज्जउ तेम
मुह मोडइ मणहत्थियउ संजमभरतरु तेम
सत्तु वि महुरइं उवसमइ सयल वि जिय वसि हुंति
चाइ कवित्तें पोरिसइं पुरिसहु होइ ण कित्ति ॥ २० ॥
अण्णाणं आयंति जिय आवइ धरण ण जाउ
उम्मग्गें चल्लन्तयहं कंटइं भज्जइ पाउ ॥ २१ ॥
अण्णाएं यलियहं वि खड, किं दुव्वलहं ण जाइ
जहिं वाएं णमंति गय तहि किं मूणो ठाइ ॥ २२ ॥
अण्णाएं दालिद्दियहं ओहट्टइ णिव्वाहु
लुगाउ पाययसारणइं फाटइ को संदेहु ॥ २३ ॥
दुल्लहु लहि मणुयत्तणउ भोयहं पेरिउ जेण
सोहकज्जि दुत्तरतरणि णाय वियारिय तेण ॥ २४ ॥

'सावयधम्म दोहा'

आचार्य पुष्पदन्त (नवीं सदी मान्यखेट दक्खिन)

सरस्वती वंदना

दुविहालंकारें विप्फुरंति लीलाकोमलइं पयाइं दिंति
महकव्वणि हेलणि संचरंति मच्चइं विण्णाणइं संभरंति
णीसेस देस भासउ चवंति लक्खणइं विसिट्ठइं दक्खवंति
अइरुंदछंदमग्गेण जंति पाणेहि मि दह पाणाइं लेंति
णववहिं मि रसेहिं संचिज्जमाण विग्गहतएण णिरु सोहमाण
चउदह पुव्विल्ल दुवालसंगि जिण वयण विणिग्गय सत्तभंगि
वायरणविति पायडियणाम पसियउ महु देवि मणोहिराम
मिरिकण्हराय करयलि णिहिय असिजलवाहिणी दुग्गयरि
धवलहरसिहरि हयमेहउलि पविउल मण्णखेड णयरि

घत्ता—एउ महु बुद्धिपरिग्गहु
णउसुयसंगहु णउ कासुवि केरउबलु ॥
भणु किह करमि कइत्तणु
ण लहमि कित्तणु जगु जि पिसुणसय संकुलु ॥

उद्यान का वर्णन

अंकुरियइं णवपल्लवघणाइं कुसुमियफलियइं णंदणवणाइं।
जहिं कोइलुहिंडइ कमलपिंडु वणलच्छिहे ण कज्जलकरंडु।
जहिं उड्डिय भमरावलि विहाइ पवरिंदणीलमेहलिय णाइं।
ओयरिय सरोवर हंसपंति चलधवलणाइं सप्पुरिसकित्ति।
जहिं सलिलइं मारुयपेल्लियाइं रयिमोसभएण व हल्लियाइं।
जहिं कमलइं लच्छिइ सहुं मणोहु सहुं ससहरेण बहुउ विरोहु।
किर दो वि ताइं महणुब्भवाइं जाणंति ण तं जडसंभवाइं।
जहिं उच्छुव णाइं रसगब्भिणाइं णावइ कव्वइं सुकइहिं तणाइं।
जुज्झंत महिस वसहुच्छवाइं मंथामंथियमंथणिरवाइं।
चवलुद्धपुच्छवच्छाउलाइं कीलियगोवालइं गोउलाइं।
जहिं चउरंगुल कोमलतणाइं घणकणकणिसालइं करिसणाइं।

घत्ता—तहिं छुहधवलियमंदिरु
णयणाणंदिरु णयरु रायगिहु रिद्धउ ॥
कुलमहिहरथणु हारिए
वसुमइणारिए भूसणु ण आइद्धउ ॥

सकेयागय विरहीयणाइं मासायपयट्टिय कंचणाइं।
वहुलोयदिण्णाणाणा फलाइं णावइ कुलाइं धम्मुज्जलाइं।
जहिं महु गइमदि मिंचियाइं विभरियाहरणाहि अंचियाइं।
ं णिणिपयपोमाहयाइं वियसंतविडवसुहंगयाइं।

छुडु मेंठचरण चोइयमयगल   छुडु आसवार वाहिय तुरंग
घत्ता—छुडु छुडु कारणि वग्गुलइहिं सेण्णइं जामवलंति परोप्पर ।
अंतरि ताम पइट्ठ तहिं मंति चवंति समुब्भिवि णियकर ।

पश्चाताप

णंकमलसर हिमाहय कायउ   दवदड्ढु रुक्खु व विच्छायउ ।
जं ओलुल्लिय मुहपहु दिट्ठउ   तं चलि भणइ हउंजि णिविट्ठउ ।
चक्कवट्टि णियगोत्तहु सामिउ   जेणमहंत भाइ ओहामिउ ।
हा किं किज्जइ भुयबल मेरउ   जं जायउ सुहिदुण्णयगारउ ।
महिपुरवरालि व वेसाभुत्ती   रज्जहु पडउ वज्जु समसुत्ती ।
रज्जहुकारणि पिउ मारिज्जइ   बंधवहुं मि विसु संचारिज्जइ ।
जिहअलि गंध गउ संघारहु   तिह रज्जेणजीउ तंवारहु ।
भड़सामंतमंतिकय भायउ   चिंतिज्जंतउ सव्वु परायउ ।
तंदुल पयसहुकारणि राणा   णरइ पडंति काइं अवियाणा ।
इच्छउ रज्जु जि दुक्खु गुरुअउ   जइ सुहु तो किं ताएं मुक्कउ ।
सुहणिहिभोयभूमि संपयधर   कहिं सुरतरु कहिगय ते कुलधर
घत्ता—दुल्लंघहु दुक्खियलंछणहो   दूसहदुक्खदुरंतहो ।
भणु दाढापंजरि पडिउ णरु को उव्वारउ कयंतहो ।।

किं किज्जइ थेरें कामुएण   किं सत्थें पाव पुरिस सुएण
कुल पुत्तएण किं णित्तवेण   समएण वि किं कर णित्तवेण
अवि विज्जाहरवर किण्णरेण   णिव्विणाए समए वि नरेण
धरणियल वध पांडपुराण्ण   कि लुद्ध दाणवपव्भाराएण
सा राई जा ससि विप्फुरिय   सा कन्ना जा हियवइ भाविय
सा विज्जा जा सयरु वि णियइ   त रज्जु जम्मि वुहयणु जियइ
ते वुह जे वुहह ण मच्छरिय   ते मित्त ण जे विहरनारय
तं धणु ज भुत्तउ दिणि जि दिणि   ज पुणवि दिण्णउ विहलयाण

दूत का निवेदन

आरणाल—ता दूएण जंपिय किं सुविणियं भणसि भो कुमारा।
बाणा भरहपेसिया णिद्धभूमिया होंतिदुण्णिवारा।

पत्थरेण किं मेरु दलिज्जइ किं खरेण मायगु खलिज्जइ।
खज्जोएं रवि णित्तेइज्जइ किं घुट्टेण जलहि सोसिज्जइ।
गप्पएण किं णहु मासिज्जइ अण्णाणें किं जिणु जाणिज्जइ।
वायसेण किं गरुडु णिरुज्झइ णवकमलेण कुलिसु किं विज्झइ।
किं हंसे ससंकु धवलिज्जइ किं मसएण कालु कवलिज्जइ।
डुंडुहेण किं सप्पु डसिज्जइ किं कम्मेण सिद्धु वसि किज्जइ।
किं णीसासें लोग णिहिप्पइ किं पइ भरहणराहिउ जिप्पइ।

घत्ता—हो होउ पहुप्पइ जंपिएण राउ तुहुप्परि वग्गइ।
करवालहिं सूलहिं सव्वलहिं परइरणंगणि लग्गइ॥

भरत और बाहुबलि का युद्ध

छुडु गज्जिय गुरु संगामभेरि ण भुक्किय णिहुयणु णिलिवि मारि
छुडु णिग्गउ भुयबलि माणिमाणि छुडु एत्तहि पत्तउ चक्कपाणि।
छुडु काले णीणिय दीहजीह पसरिय माणुस मसासलोह।
थिय लायघाल जोवियणिरीह डोल्लिय गिरि गज्जिय गहणि सीह।
छुडु भडभारें डलहलिय धरणि छुडु पहरणकुरणें हसिउ तरणि।
छुडु चडवलाइं पलोइयाइं छुडु उहयबलाइं पधावियाइं
छुडु मच्छरचरियइं वड्ढियाइं छुडु णामइं णग्गइं कड्ढियाइं।
छुडु चक्कइं णहगामियाइं छुडु सेल्लइं भिण्णहिं भामियाइं।
छुडु कोंतइं चरियइं समुहाइं रमयइं जायइं दिम्मुहाइं।
छुडु मुड्ढिणिवेसिय णरवरिंद छुडु पसुज्जल गुणि णिहिय कंड
छुडु गयकायर परहारियमाण छुडु ढाइय मवण ण विमाण।

जइ तुहुं जि कुकम्मइं आयरहि मणु कुवहि वईतउ वउ धरहि।
तो कासु पासि जगु लहइ जउ जहि रक्खगु तहि उप्पणु मउ।
अण्णुवि णाणाविह दुक्खमरु परहरु इहरत्त परत्तहरु।
त णिसुणिवि लक्केसरु भणइ को रइकहाणियाउ सुणइ।
महुं किंकरु ताव पढमु जणउ पुणरवि दसरहु दसरहतणउ।
तहु दिण्णी हउं कि किर रममि परलजिय सीय कि ण रमनि।
घत्ता—पुव्व पउत्त महु पच्छइ रहुणाहहु दिण्णी।
सो छिद्दिरिण सुगेण मइं आणिय णयणरवण्णी॥

राम की प्रतिज्ञा

गिरि सोहइ हरिणा भउ जणतु पहु सोहइ हरिणा महि जिणतु।
गिरि सोहइ मत्तमऊरणाउ पहु सोहइ णायमऊरणाउ।
गिरि सोहइ वरवणवारणेहिं पहु सोहइ वारिणिवारणेहिं।
गिरि सोहइ उड्डियवाणरेहिं पहु सोहइ मग्गयवाणरेहिं।
गिरि सोहइ णयवाणसिरोहिं पहु सोहइ भडवाणसएहिं।
तहिं पुव्वकोडिसिल दिट्ठतेहिं पुज्जिय वंदिय हरिहल हरेहिं।
मतिहिं पउत्तु भो धम्मरासि उद्धरिय तिविट्ठें एह आसि।
एवहिं जइ लक्खणु भुयहिं धरइ सो देव तिखंड धरत्ति हरइ।
त णिसुणिवि पभणइ रामुएव अज्जु वि तुम्हह मणि भंति केव।
जांव वि रणि णिद्दलियउ दसासु जाव वि मिरि दिण्ण विहीसणासु।
तांव वि तुम्हह संदेहबुद्धि लइकिज्जइ सव्वह हिययसुद्धि।
घत्ता—जो अतुलइ तुलइ बलवंत विरिउ विणिवायइ।
सो रविकुलधवलु मिल एह किम ण उच्चायइ॥

सीता का विलाप

धाहावइ साय मणाहिरामु पच्छलउ छाडउ काइ रामु

कृष्ण का बचपन

दुवई—धूलोधूसरेण वरमुक्कसुरेण तिणा मुरारिणा।
कीलारसवसेण गोवालयगोवीहियवहारिणा ॥

रंगंतेण रमंतरमंतें मंथउ धरिउ भमंतुभमंतें।
मंदीरउ तोडिवि आवट्टिउ अद्धविरोलिउ दहिउ पलोट्टिउ।
कावि गोवि गोविंदहु लग्गी एण महारी मंथणि भग्गी।
एयहि मोल्लु देउ आलिंगणु णं तो मा मेल्लहु मे प्रंगणु।
काहि वि गोविहि पंडुरु चेलउ हरितणुतेएं जायउं कालउ।
मूढ जलेण काइं पक्खालइ णियजडत्तु सहियहिं दक्खालइ।
थणणरसिच्छिरु छायावंतउ मायहि ममुहु परिधावंतउ।
महिसिसिलवउ हरिणा धरियउ ण करणिबंधणाउ णीसरियउ।
दोहउ दोहणहत्थु समीरइ मुइ मुइ माहव कीलिउ पूरइ।
कत्थइ अंगणभमणालुद्धउ बालवच्छु बालेण णिरुद्धउ।
गुंजाभेंडुयरइयपओगें मेल्लाविउ दुक्करेंहि जणोंग।
कत्थइ छोपियपिडु रिक्खिउ कएहिं कंसहु णं जसु भक्खिउं।

घत्ता—रमरियकरयलेंहि सदनिहि मुइमुइकारिणिहिं।
भहिइ णियडि थिए घरयम्मु ण लग्गइ णारिहि ॥

पोयणुनगर का वर्णन

जहिं इदणीकन्तोविहिएणु, णउ णज्जइ कज्जलु णयणि दिण्णु।
[illegible] पोमरायमाणिक्कदित्ति, उच्छलइ ण दीसइ घुसिणलित्ति।
[illegible] महिय थणत्थलीहि, जहिं रत्त वलि हारावलीहि।
[illegible] णिवडियभुसणफुरियमग्गु हरिलत्ताकरिमगयरहमग्गु
जहिं लोय धवलवालउ [illegible] वइइ कुंकुमचक्कमिज्जइ [illegible]
जहिं वहलधवलकप्पूर [illegible] कुसुमच्चलि [illegible] मल वत्तु लिय [illegible]

कृष्ण का बचपन

दुवई—धूलीधूसरेण वरमुक्कसुरेण तिणा मुरारिणा।
कीलारसवसेण गोवालयगोवीहिययहारिणा॥

रंगंतेण रमंतरमंतें मंथउ धरिउ भमंतु अणंतें।
मंदीरउ तोडिवि आवट्टिउं अद्धविरोलिउ दहिउं पलोट्टिउ।
कावि गोवि गोविंदहु लग्गी एण महारी मंथणि भग्गी।
एयहि मोल्लु देउ आलिंगणु णं तो मा मेल्लहु मे प्रंगणु।
काहि वि गोविहि पंडुरु चेलउं हरितणुतेएं जायउं कालउं।
मूढ़ जलेण काई पक्खालइ णियजडत्तु सहियहिं दक्खालइ।
थणणरसिच्छिरु छायावंतउ मायहि समुहु परिधावंतउ।
महिससिलबउ हरिणा धरियउ णं करणियबधणाउ णीसरियउ।
दोहइ दोहणहत्थु समीरइ मुइ मुइ माहव कीलिउ पूरइ।
कत्थइ अंगणभवणालुद्धउ बालवच्छु थालेण णिरुद्धउ।
गुंजामंडुयरइयपओएं मेल्लाविउ दुक्खेहि जसोएं।
कत्थइ लोणियपिंडु णिरिक्खिउ कण्हें कसहु णं जमु भक्खिउं।

घत्ता—रसरियकरयलेहिं मइतिहिं मुइमुइकारिणिहिं।
मंद्दिइ णियडि थिए धरयम्मु ण लग्गइ णारिहिं॥

पोयणुनगर का वर्णन

जहिं इदगोकंनोविहियणु, णाउ णच्चइ कच्चनु णयणि दिट्ठु।
जहिं पोमरायमाणिक्कदित्ति, उच्छलइ ण दीसइ घुसिणलित्ति।
सममेहइ महिय धणत्थलीहिं, जहिं रयणावलि हारावलीहिं।
जहिं णिवडियभूसणफुरियमग्गु, हरिणीलाकरिमयपंकदुग्गु।
जहिं लोयधित्तनवोलराउ, चुड्डइ कुसुमचक्कलि पाउ।
जहिं वहलधवलकप्पूरधूलि कुसुमाव लिदरिमलविनु लिणंति

पुरानी हिन्दी

प्रबंध चिंतामणि

अम्मणिओं सदेसडओ नारय कन्ह कहिज्ज।
जगु दालिद्दिहि डुब्बिउं बलिबंधणह मुहिज्ज ॥ १ ॥
उग्गा ताविउ जहिं न किउ लक्खउ भणइ निघट्ट।
गणिया लब्भइ दीहडा किउ दह अहवा अट्ठ ॥ २ ॥
मुंज खडल्ला दोरडी पेक्खेसि न गम्मारि।
आसाढि घण गज्जीइं चिक्खिल्लि होसे वारि ॥ ३ ॥
मुंज भणइ मुणालवइ जुव्वण गयउं न मूरि।
जइ सक्कर सय खंड थिय तो इस मीठो चूरि ॥ ४ ॥
मइ चिन्तइ मट्ठी मणइ बत्तीसडा हियाह।
अम्मी ते नर डड्ढमा जे वीससइ तियाह ॥ ५ ॥
झाली तुट्टी किं न मुउ किं न हुयउ छारपुंज।
हिंडइ [illegible] जिम मक्कड तिम मु[illegible]
[illegible] निब्भर।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

वच्छहे गृण्हइ फलइ जणु कडुपल्लव वज्जेइ।
तोवि महद्दुमु सुअणु जिव ते उच्छङ्गि धरेइं ॥११॥

दूरुड्डाणें पडिउ खलु अप्पणु जणु मारेइ।
जिह गिरि-सिङ्गहुँ पडिअ सिल अन्नुवि चूर करेइ ॥१२॥

जो गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्सु।
तसु हउं कलिजुगि दुल्लहहो बलि किज्जउं सुअणस्सु ॥१३॥

तणहं तइज्जी भङ्गि नवि तें अवडयडि वसन्ति।
अह जणु लग्गिवि उत्तरइ अह सह सइं मज्जन्ति ॥१४॥

दइवु घडावइ वणि तरुहुँ सउणिहं पक्क फलाइं।
सो वरि सुक्खु पइट्ठ णवि कण्णहि खलवयणाइं ॥१५॥

धवलु विसूरइ सामिअहो गरुआ भरु पिक्खेवि।
हउं कि न जुत्तउ दुहुँ दिसिहि खण्डइं दोण्णि करेवि ॥१६॥

गिरिहे सिलायलु तरुहे फलु घेप्पइ नीसावन्नु।
घरु मेल्लेप्पिणु माणुसह तोवि न रुच्चइ रन्नु ॥१७॥

तरुहुँ वि वक्कलु फलु मुणि वि परिहणु असणु लहन्ति।
सामिहुँ एत्तिउ अग्गलउँ आयरु भिच्चु गृहन्ति ॥१८॥

अग्गिए उण्हउ होइ जगु वाए सीअलु तेव।
जो पुणु अग्गि सीअला तसु उण्हत्तणु केवं ॥१९॥

विप्पिअ-आरउ जइवि पिउ तोवि तं आणहि अज्जु।
अग्गिण दड्ढा जइवि घरु तो तें अग्गि कज्जु ॥२०॥

जिव जिव वंकिम लोअणहं णिरु सामलि सिक्खेइ।
तिव तिव वम्महु निअय-सर खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥२१॥

सगरसएँहि जु वण्णिअइ देक्खु अम्हारा कन्तु।
अइमत्तहं चत्तंकुसहं गय कुम्भइं दारन्तु ॥२२॥

अम्मीए सत्थावत्थेहिँ सुधि चिन्तिज्जइ माणु ।
पिए दिट्ठे हल्लोहलेण को चेअइ अप्पाणु ॥ ८३ ॥
सवधु करेप्पिणु कधिदु मइं तसु पर सभलउ जम्मु ।
जासु न चाउ न चारहडि नय पम्हट्ठउ धम्मु ॥ ८४ ॥
जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिया कुड्डु करीसु ।
पाणीउ नवइ सरावि जिवँ सव्वङ्गें पइसीसु ॥ ८५ ॥
उअ कणिआरु पफुल्लिअउ कञ्चणकन्तिपयासु ।
गोरीवयणविणिज्जिअउ न सेवइ वणवासु ॥ ८६ ॥
प्रासु महारिसि एउ भणइ जइ सुइसत्थु पमाणु ।
मायहं चलण नवन्ताहं दिवि दिवि गङ्गाण्हाणु ॥ ८७ ॥
केम समप्पउ दुट्ठु दिणु किध रयणी छुडु होइ ।
नववहु-दंसण लालसउ वहइ मणोरह सोइ ॥ ८८ ॥
ओ गोरीमुहनिज्जिअउ वद्दलि लुक्कु मियंकु ।
अन्नु वि जो परिहवियतणु सो किवँ भवँइ निसंकु ॥ ८९ ॥
बिम्बाहरि तणु रयणवणु किह ठिउ सिरि आणन्द ।
निरुवम रसु पिए पिअवि जणु सेसहो दिण्णी मुद्द ॥ ९० ॥
भण सहि निहुअउ तेवँ मइं जइ पिउ दिट्ठु सदोसु ।
जेवँ न जाणइ मज्झु मणु पक्खावडिअं तासु ॥ ९१ ॥
मइं भणिअउ बलिराय तुहुं केहउ मग्गण एहु ।
जेहु तेहु नवि होइ वढ मइं नारायणु एहु ॥ ९२ ॥
जइ सो घडदि प्रयावदी केत्थुवि लेप्पिणु सिक्खु ।
जेत्थुवि तेत्थुवि एत्थु जगि भण तो तहि सारिक्खु ॥ ९३ ॥
जाम न निवडइ कुम्भयडि सीहचवेडचडक्क ।
ताम समत्तहं मयगलहं पइ पइ वज्जइ ढक्क ॥ ९४ ॥

कम्हु जु मोहहो उपसिज्जइ सं महु म्वडिउ माणु ।
मोहु निरुक्खउ गय हणइ पिउ पयरुक्खगमाणु ॥१०७॥
जणु जीविउ भणु मरणु पिअ रूसिज्जइ काइं ।
दंसइं दिम्मरा रूगणा दिच्चइं धरिममयाइं ॥१०८॥
माणि पणट्ठइ जइ न तणु तो देसडा चइज्ज ।
मा दुज्जणकरपल्लवेहिं दंसिज्जन्तु भमिज्ज ॥१०९॥
लोणु विलिज्जइ पाणिएण अरि खलमेह म गज्जु ।
वालिउ गलइ सुझुम्पडा गोरी तिम्मइ अज्जु ॥११०॥
विहवि पणट्ठइ वंकुडउ रिद्धिहिं जणसामन्नु ।
किंपि मणाउ महु पियहो ससि अणुहरइ न अन्नु ॥१११॥
किर खाइ न पिअइ न विद्दवइ धम्मि न वेच्चइ रूअडउ ।
इह किवणु न जाणइ जह जमहो खणेण पहुच्चइ दूअडउ ॥११२॥
जाइज्जइ तहिं देसडइ लब्भइ पियहो पमाणु ।
जइ आवइ तो आणिअइ अहवा तं जि निवाणु ॥११३॥
जउ पवसन्तें सहुं न गयअ न मुअ विओएं तस्सु ।
लज्जिज्जइ संदेसडा देन्तेहिं सुहयजणस्सु ॥११४॥
एत्तहे मेह पिअन्ति जलु एत्तहे वडवानल आवट्टइ ।
पेक्खु गहीरिम सायरहो एक्कवि कणिअ नाहिं ओहट्टइ ॥११५॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

हिअडा! पइं एहु बोल्लिअओ महु अग्गइ सयवार ।
फुट्टिसु पिए पवसन्ति हउं भंडय ढक्करिसार ॥१२०॥

एक कुडुल्ली पंचहिं रुद्धी
तहं पंचहं वि जुअंजुअ बुद्धी ।
बहिणुए तं घर कहि किव नन्दउ
जेत्थु कुडुम्बउं अप्पण-छन्दउ ॥१२१॥

जो पुणि मणि जि खसफसिहूअउ चिन्तइ देइ न दम्मु न रूअउ ।
रइवसभमिरु करग्गु ल्लालिउ घरहिं जि कोन्तु गुणइ सो नालिउ ॥१२२॥

चलेहिं चलन्तेहिं लोअणेहिं जे तइं दिट्ठा बालि ।
तहिं मयरद्धय दडवडउ पडइ अपूरहिं कालि ॥१२३॥

गयउ सु केसरि पिअहु जलु निच्चिन्तइं हरिणाइं ।
जसु केरए हुंकारडए मुहहुं पडन्ति तृणाइं ॥१२४॥

सत्थावत्थहं आलवणु साहुवि लोउ करेइ ।
आदन्नहं मब्भीसडी जो सज्जणु सो देइ ॥१२५॥

जइ रखसि जाइट्ठिअए हिअडा मुद्धसहाव ।
लोहें फुट्टणएण जिवं घण सहेसइ ताव ॥१२६॥

मइं जाणिउ बुड्डीसु हउं पेम्मद्रहि हुहुरुत्ति ।
नवरि अचिन्तिय संपडिय विप्पिय नाव झडत्ति ॥१२७॥

खज्जइ नउ कसरक्कहिं पिज्जइ नउ घुण्टेहिं ।
एवइ होइ सुहच्छडी पिए दिट्ठे नयणेहिं ॥१२८॥

अज्जवि नाहं महु ज्जि घरि सिद्धत्था वंदेइ ।
ताउ जि विरह गवक्खेहिं मक्कडघुग्घिउ देइ ॥१२९॥

सिरि जरखण्डी लोअडी गलि मणिअडा न वीस ।
तो वि गोट्ठडा कराविआ मुद्धए उट्ठबइस ॥१३०॥

देसुगाडणु सिहिकढणु घणकुट्टणु ज लोइ ।
मञ्जिट्ठए अइरत्तिए सव्व सहेव्वउं होइ ॥१५३॥
हिअडा जइ वेरिअ घणा तो कि अब्भि चडाहुं ।
अम्हाहिं वे हत्थडा जइ पुणु मारि मराहुं ॥१५४॥
रक्खइ सा विसहारिणी बे कर चुम्बिवि जीउ ।
पडिबिम्बिअमुञ्जालु जलु जेहिं अडोहिउ पीउ ॥१५५॥
बाह विछोडवि जाहि तुहुं हउं तेवंइ को दोसु ।
हिअयट्ठिउ जइ नीसरहि जाणाउँ मुञ्ज सरोसु ॥१५६॥

जेप्पि असेसु कसायबलु देप्पिणु अभउ जयस्सु ।
लेवि महव्वय सिवु लहहिं झाएविणु तत्तस्सु ॥१५७॥
देव दुक्करु निअयधणु करण न तउ पडिहाइ ।
एम्वइ सुहु भुञ्जणहं मणु पर भुञ्जणहिं न जाइ ॥१५८॥
जेप्पि चएप्पिणु सयल धर लेविणु तवु पालेवि ।
विणु सन्तें तित्थसरेण को सक्कइ भुवणेवि ॥१५९॥
गंप्पिणु वाणारसिहिं नर अह उज्जेणिहिं गप्पि ।
मुआ परावहिं परमपउ दिव्वन्तरहिं म जम्पि ॥१६०॥
गग गमेप्पिणु जो मुअइ जो सिवतित्थ गमेप्पि ।
कीलदि तिदसावास गउ सो जमलोउ जिणेप्पि ॥१६१॥

रवि अत्थमणि समाउलेण कण्ठि विइण्णु न छिण्णु ।
चक्कें खण्ड मुणालियहे नउ जीवग्गलु दिण्णु ॥१६२॥
वलयावलि-निवडण-भएण धण उद्धब्भुअ जाइ ।
वल्लहविरह-महादहहो थाह गवेसइ नाइ ॥१६३॥

पेक्खेविणु मुहु जिणवरहो दीहरनयण सलोणु ।
नावइ गुरुमच्छरभरिउ जलणि पवीसइ लोणु ॥१६४॥

परिशिष्ट

महाकवि कालिदास

गंध से उन्मत्त भ्रमरों के गुंजन, तथा बजती हुई, कोयल रूपी तुरही के साथ, विविध प्रकार से, यह कल्पवृक्ष अत्यंत सुंदर नृत्य कर रहा है; उसकी फैली हुई डालियाँ और पल्लव पवन से हिल डुल रहे हैं ॥१॥

हे मयूर ? तुमसे मेरी प्रार्थना है कि यदि इस अरण्य में तुमने भ्रमण करती हुई, मेरी प्रियतमा को देखा हो तो मुझसे कहो। सुनो, तुम उसे उसके चंद्रमुख और हंसगति से पहचान सकते हो इस लिए मैंने तुमसे पूछा ॥२॥

अरी दूसरों से पालीजानेवाली कोयल ? यदि तूने मधुर-भाषिणी मेरी प्रियतमा को, नंदनवन में, स्वच्छंद विहार करते हुए देखा हो, तो मुझे बता ॥३ अ॥

रे रे हंस, तू मुझसे क्या छिपा रहा है। तेरी चाल से ही मैं जान चुका हूं कि तूने मेरी जघनभरालस प्रियतमा को अवश्य देखा है। नहीं तो तुझ जैसे गति के लालची को इतनी सुंदर चाल की शिक्षा किसने दी ॥३ ब॥

गोरोचनकुंकुम के समान वर्णवाले हे चकवे तुम बताओ ? क्या तुमने वसंत के दिनों में खेलती हुई हमारी प्रियतमा को देखा है ? ॥४॥

दया ही धर्मवृक्ष का मूल है जिसने इसे उत्पाटित कर डाला उसने दल फल और कुसुम की कौन बात, - मांस ही खा लिया ॥४॥

धनिकों का धन वेश्या में लगता है, और बंधु मित्र, सब छूट जाते हैं, वेश्या के घर में प्रवेश करनेवाला नर सब गुणों से मुक्त हो जाता है ॥५॥

परस्त्री बहुत बड़ा बधन ही नहीं, अपितु वह नरकनसैनी भी है, विषकंदली मूर्छित ही नहीं करती, किन्तु प्राणों की भी हानि कर डालती है ॥६॥

यदि अभिलाषा का निवारण हो गया तो परदारा का त्याग हुआ। नायक को जीत लेने पर, समस्त स्कंधावार (सेना) विजित हो जाती है ॥७॥

व्यसन तो तब छूटेंगे, हे जीव ? जब आसक्त मनुष्यों का परिहार किया जाय। क्योंकि देखो, सूखे वृक्षों के सम्पर्क से हरे वृक्ष भी दह जाते हैं ॥८॥

मान के कारण, पराई स्त्री सीता की इच्छा रखने से, रावण का नाश हुआ। दृष्टि विष दृष्टिमात्र से मार डालता है, उससे डसे जाने पर तो कौन जी सकता है ॥९॥

पशु धन धान्य मैत्री इनमें परिमाण से प्रवृत्ति कर बंधनों में बहुत बल (आटा) होने से उनका तोड़ना कठिन हो जाता है ॥ १० ॥

हे जीव भोगों का भी प्रमाण रख। इन्द्रियों को बहुत अभिमानी मत बना। काले सांपों का दुग्ध से पोषण करना अच्छा नहीं होता ॥ ११ ॥

अन्याय से दरिद्रों की आजीविका भी टूट जाती है, जीर्ण वस्त्र पांव पसारने से फटेगा ही, इसमें संदेह नहीं ॥ २२ ॥

दुर्लभ मनुष्यशरीर पाकर भी, जिसने उसे भोगों में समाप्त कर दिया उसने मानो लोहे के लिए दुस्तरतारिणी नाव तोड़ डाली ॥ २३ ॥

आचार्य पुष्पदंत

आचार्य पुष्पदंत अपभ्रंशभाषा के सर्वश्रेष्ठ और स्वतन्त्र चेता कवि थे। वाणी उनकी जीभ पर नर्तित रहती थी, उनके अनेक उपनामों में, काव्य-पिशाच और अभिमान-मेरु भी उनके उपनाम थे, इनसे उनकी असाधारण काव्यप्रतिभा और अक्खड़स्वभाव का पता चलता है। महापुराण की उत्थानिका में वह लिखते हैं कि गिरिकंदराओं में घास खाकर रहना अच्छा, पर दुर्जनों की टेढ़ी भौंहें देखना ठीक नहीं।[१] इन पंक्तियों से ऐसा जान पड़ता है कि कवि को अपने जीवन में अपमान के दिन देखने पड़े थे। उत्तरपुराण के अंत में अपना परिचय देते हुए कवि ने अपने लिए काश्यप गोत्री और सरस्वतीविलासी कहा है।[२] अतिमदिनों में आचार्य पुष्पदंत मान्यखेट में महामंत्री 'भरत' के निकट अत्यधिक सम्मानित होकर रहे। पर कंचन और कीर्ति से वह सदैव निर्लिप्त

(१) तं सुणिवि भणइ अहिमाणमेरु
वर खज्जइ गिरिकंदरि कसेरु
णउ दुज्जन भउंहावंकियाइं
दीसंतु कलुसभावंकियाइं

(२) केसव[illegible] पुत्त कासवगोत्त
[illegible]मल [illegible] [illegible]

आपने आपको रोक लिया है। यह सुनकर नागकुमार चौंक पड़ा। वह रोष से उत्पन्न करने लगा, और श्रीगिरि हाथी पर चढ़कर निकला, क्षण में युद्ध और युद्ध के लिए सन्नद्ध, उससे भिड़ गया। प्रभु को देखकर भय से कांपता हुआ वह भट (दुर्वचन) हाथी की पीठ से उतर कर नागकुमार के पैरों पर गिर पड़ा और बोला कि मैं दैव के द्वारा ठगा गया हूँ।

(णायकुमार चरिउ)

यशोधरराजा

जो त्याग में कृष्ण, वैभव में इन्द्र, रूप में कामदेव और कांति में चंद्रमा है। यम की तरह जो प्रचंड पाप करता है। शत्रुरूपी वृक्षों के निर्दलन में, जो बल में, वायु के समान है। ऐरावत की सूँड़ की तरह, जिसके बाहु स्थूल और प्रचंड हैं। सत्पुरुषों में जो मणिस्वरूप है। जिसकी चोटी भ्रमरसमूह की तरह नीली सोहती है। जो समर्थ भटों में श्रेष्ठ व्यक्ति है। जहां गोपुर में किवाड़ लगे हैं और जहाँ अनेक वस्तुएं हैं, शक्तित्रय की सम्हाल में जो अत्यन्त दक्ष है, और लाखों लक्षणों से अंकित है, जो प्रसन्नमूर्ति है, और जिसकी वाणी मेघ की तरह गम्भीर है। इस प्रकार मंत्री और सामंतों की सहायता से वह राज्य और प्रजा का पालन करता था। इसी काल में धनधान्य से पूरित राजपुर नगर में, एक कापालिक कुलाचार्य आए।

मानव शरीर

मनुष्यशरीर दुःख से भरा है। बार बार धोने पर भी वह [illegible] ही हो जाता है। बार बार सुवासित करने पर भी उसका मल सुरभित नहीं होता। बार बार पोषण करने पर भी उसमें बल नहीं

है, और दुर्जन गुण रहित। जो (दुर्जन) जहर की तरह मलिनहृदय होते हैं, साँपों की तरह परछिद्र खोजनेवाले, अड़बादियों की तरह रस-विहीन, राक्षसों की तरह दाँपों के आकार, दूसरों की पीठ पर पलनेवाले, दुष्टहृदय दुर्जन, सत्कवि की भी निंदा करते हैं। जो आबाल वृद्ध को संतोष देने वाला है, लक्ष्मण सहित राम का जिसमें वर्णन है, प्रवरसेन का ऐसा सेतुबंध काव्य भी दुर्जनों द्वारा उपमर्दित होता है। तो फिर, न तो मेरे पास बुद्धि का परिग्रह है, न श्रुतसंग है, और न किसी का बल है, कहाँ कैसे कविता की जाय? सौ सौ चुगलखोरों से व्याप्त, इस जगत में मुझे कीर्ति प्राप्त नहीं होगी।

उद्यान का वर्णन

जो उद्यान नव अंकुरित कोपलों से सघन और कुसुमित फल फूलों से कलित है, जहाँ कृष्णवर्ण की कोयल घूम रही है, मानो वनलक्ष्मी का कज्जल-समूह हो। जहाँ उड़ती हुई, भ्रमरमाला, उत्तम इन्द्रनील मणियों की मेखला की तरह सोह रही है। सरोवरों में अवतरित हंसों की पाँत सत्पुरुष की गतिशील और शुभ्र कीर्ति की तरह जान पड़ती है। जहाँ पवन से प्रेरित पानी ऐसा जान पड़ता है मानो रवि के शोषण के भय से काँप रहा हो। जहाँ लक्ष्मी और कमल का तो आपस में स्नेह है, परन्तु चन्द्रमा से बैर है, यद्यपि दोनों समुद्र से निकले हैं पर जड़ (जल) से उत्पन्न होने के कारण वे यह नहीं जानते। जहाँ ईख के वन श्रेष्ठ कवियों के विशाल काव्यों की तरह रसगर्भित हैं। जहाँ जूझते हुए महिषों और बैलों के उन्मत्त हो रहे हैं। उनके मथन का शब्द हो रहा है। जहाँ रम्भाते हुए और चंचल उठी हुई पूँछवाले बच्छों से आकुलित, और जिनमें गोपाल खेल रहे हैं ऐसे गोकुल

[३]
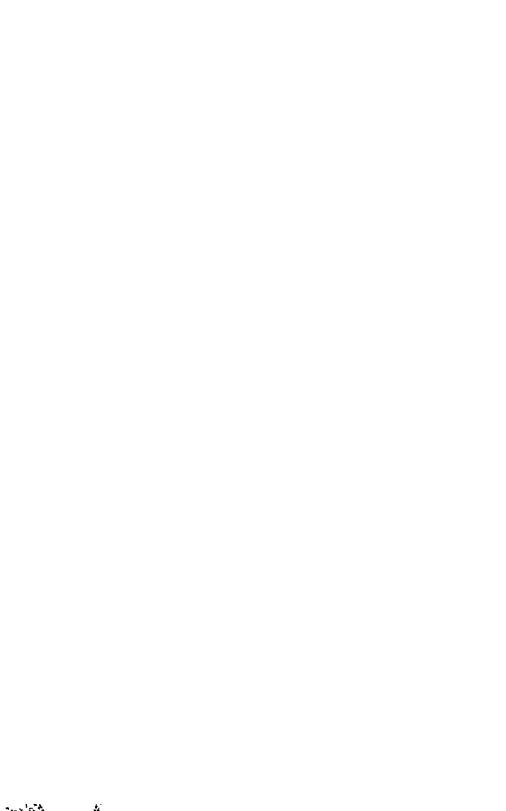
उस पुर में प्रवेश करते हुए, उसे ऐसी कोई वस्तु नहीं दिखाई दी जो प्रिय न हो। बावड़ी और कुआ वहाँ बहुत ही सुन्दर और अनेक थे। मठ विहार और मंदिरों के कारण, यह नगर अत्यन्त रमणीय लगता था। पर उन मंदिरों में किसी व्यक्ति को पूजा करने के लिए उसने जाते नहीं देखा। वहाँ फूलों से मीठा परिमल झड़ रहा था पर कोई उसे सूँघनेवाला नहीं था। पके हुए धान्य और अन्न को नष्ट होने से बचाने के लिए, वहाँ कोई ऐसा न था जो काट कर उन्हें घर लाता। मड़राते हुए भौंरों के गुंजन से मुखरित कमलों से सरोवर भरे थे, पर उनको तोड़ने वाला कोई नहीं था। उसे यह देखकर विस्मय होता था कि वृक्षों के फल हाथ से तोड़े जा सकते हैं। पर किसी कारण, कोई उन्हें तोड़कर नहीं खाता। दूसरे के धन को देखकर न उसे क्षोभ ही होता था और न लोभ ही। यह मन ही मन सोच रहा था, अचरज की बात है कि यह नगर बड़े विचित्र ढंग से बना है, यहाँ के निवासी जन या तो व्याधि से मर गए या फिर म्लेच्छ और राक्षसों ने उन्हें नष्टकर डाला। यहाँ का राजकुल भी विचित्र ढंग से निर्मित हुआ है। पर यहाँ के राजा का पता ही नहीं। ना मालूम, किस कारण यह अवस्था हुई। वह कुमार, नसों में धड़कन लेकर विस्फारित नेत्रों से, पद-पद पर विस्मय करता हुआ, उस नगर में भ्रमण कर रहा था। वृक्षों के पल्लव और दलों के कारण यह नगर अत्यन्त सुकुमार था।

खेलनेवालों के बिना जुआघर की, अथवा यौवनहीन वेश्या की भाँति श्रेष्ठ घरों के आंगन का विस्तार मनुष्यों के बिना शोभाहीन है। पात्रों से युक्त भी रसोईघर शून्य होने से अच्छे नहीं लगते। उनकी अवस्था वैसी है जैसे सज्जनों के बिना परदेश। हा! अधिक कहने से क्या फल? इसको देखकर, कौन दुखी नहीं होता? जो सम्यक्ज्ञान से युक्त है उसे समृद्धि कैसे मिल सकती है!

मुनि रामसिंह

जो सुख, अपने अधीन हो उसीमें संतोष कर। हे मूर्ख, दूसरों के सुख की चिंताकरनेवालों के हृदय का सोच, कभी नहीं जाता ॥ १ ॥

जो सुख, विषयविमुख होकर अपनी आत्मा का ध्यान करने में मिलता है, वह सुख, करोड़ों देवियों के साथ रमण करनेवाला इन्द्र भी नहीं पाता ॥ २ ॥

साँप, काँचली तो छोड़ देता है परन्तु जो विष है उसे नहीं छोड़ता। इसी प्रकार (मनुष्य) मुनि का वेष तो धारण कर लेता है परन्तु भोगों के भाव का परिहार नहीं करता ॥ ३ ॥

मैं गोरा हूँ, मैं सावला हूँ, मैं विभिन्न वर्ण का हूँ, मैं दुर्बल हूँ, मैं स्थूल हूँ। हे जीव, ऐसा मत मान ॥ ४ ॥

न तू गोरा है न साँवला न एक भी वर्ण का है। न तू क्षीण है और न स्थूल। अपने स्वरूप को ऐसा जान ॥ ५ ॥

न मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण हूँ। न वैश्य हूँ। न क्षत्रिय हूँ। न शूद्र हूँ। न पुरुष नपुंसक और स्त्रीलिंग हूँ। ऐसा विशेष जान ॥ ६ ॥

मैं सगुण हूँ और प्रिय निर्गुण निर्लक्षण तथा निसंग है। एक ही अंगरूपी अङ्क में बसने पर भी, अंग से अंग नहीं मिल पाया ॥ १६ ॥

षड्दर्शन के धंधे में पड़कर, मन की भ्रांति नहीं मिटी। एक देव के छः भेद किए इसमे वे मोक्ष नहीं जाते ॥ १७ ॥

हे मूड़ मुड़ाने वालों में श्रेष्ठ मुंडी ? तूने सिर तो मुड़ाया पर चित्त को नहीं मोड़ा। जिसने चित्त का मुंडन कर डाला उसने संसार का खंडन कर डाला ॥ १८ ॥

पुण्य से विभव होता है, विभव से मद, मद से मतिमोह और मतिमोह से नरक, ऐसा पुण्य मुझे नहीं चाहिए ॥ १९ ॥

किस की समाधि करूं ? किसे पूजूं, स्पृश्य अस्पृश्य कहकर किसे छोड़ दूं, भला किसके साथ कलह ठानूं। जहाँ-जहाँ देखता हूँ, वहाँ-वहाँ अपनी ही तो आत्मा दिखाई देती है ॥ २० ॥

तू तड़-तड़ पत्तियाँ तोड़ता है, मानो ऊंट का प्रवेश हुआ हो, मोह के वशीभूत होकर तू यह नहीं जानता कि कौन तोड़ता है और कौन टूटता है ॥ २१ ॥

[illegible]

[illegible]

मानो शेषनाग की पत्नी जा रही हो। दूर से बहती हुई, यह बहुत भली लगती है, मानो गिरिराज हिमालय की कीर्ति हो। दोनों किनारों पर लोग स्नान कर रहे हैं, इस लिए हुए, अपने हाथ उठाकर सूर्यदेव को जल चढ़ा रहे हैं, मानों इन सबके व्याज से गंगा जी कहना चाहती हैं,—मैं तो अपने शुद्ध रास्ते जा रही हूँ, हे स्वामी आप हमारे ऊपर रुष्ट न हों।" नदी का निरीक्षण कर, करकंड नाम का वह राजा, अपने पिता के नगर में गया, वह नगर गुणों का तो आश्रय ही था। उसने युद्ध में धनुर्धरों द्वारा मुक्त बाणों से विद्याधर और देवों को भय उत्पन्न कर दिया और दुद्धर हाथियों घोड़ों और राजों के द्वारा नगर को चारों ओर से घेर लिया।

आक्रमण का प्रतिरोध

तब चम्पा नरेश उठा और युद्ध में देवों को भी भय उत्पन्न करने वाले उसके अनुचर दौड़े। वायु के समान वेगशील घोड़े तथा हाथी सजा दिए गए। चक्रों से चिक्कार करते हुए बड़े २ रथ चलने लगे। और कोई कोई हक्कार डक्कार और हुकार करते हुए, ... लेकर दौड़े। कोई कोई स्वामी के सम्मान को बहुत ...कर और राजा के पादपद्मों में अतिशय भक्ति से, हाथ में धनुष लेकर दौड़ पड़े वे रणदुद्धर थे और उनके हृदय में उत्साह था। ... क्रोध में कांपते हुए और कोई तलवार चमकाते हुए। कोई ... आप कवच बांध कर, कोई युद्धभूमि के रस में मग्न ... की निश्चल सम्पत्ति से युक्त होकर ... । चम्पा का राजा बाहर निकला। वह उत्तम हाथी और घोड़ों से ... था। कहा, उसको प्रचंड

होकर प्रयागतरु से गिरे, तो भी निष्कपट शुद्धाचार और चित्त-शुद्धि के बिना, वह मोक्ष नहीं पा सकता ॥३॥

अदृष्ट तंत्री (नाड़ीजाल) में शरीर रूपी वीणा बज रही है। उस कण्ठादि स्थानों को ताड़ित करता हुआ शब्द उठ रहा है, इस लिए जहाँ विश्राम प्राप्त हो उसी का ध्यान करो, मुक्ति के अन्य कारण निष्फल हैं ॥४॥

जो सत्यवचन बोलता है और जो उपशम भाव को धारण करता है वह निर्वाण को प्राप्त करता है ॥५॥

यमुना गंगा सरस्वती और नर्मदा प्रभृति नदियों में जा जाकर अज्ञानी लोग, पशु की तरह जल में डुबकी लगाते हैं। क्या जल मोक्षसुख देने वाला है ? ॥६॥

पुरानी हिन्दी

प्रबन्ध चिन्तामणि

राजा विक्रमादित्य ने रात में नगर का निरीक्षण करते हुए [illegible] प्रथम [illegible] के मुख से सुना [illegible] दिन [illegible] [illegible] है—

[illegible] ॥

[illegible] है—

जापक निःसंकोच होकर कह रहा है कि यदि उदीयमान पराक्रमी वीर ने शत्रुओं को मर्दन नहीं किया, तो क्या ? दिन तो, गिने हुए मिलते हैं, दस या आठ ॥२॥

मालव नरेश मुंज किसी स्त्री में आसक्त था, वह रात ही रात ऊंट पर चढ़कर बारह योजन जाता था, कुछ दिन बाद, मुंज ने जाना छोड़ दिया, इस पर उस खंडिता ने यह दोहा लिखकर भेजा—

हे मूर्ख मुंज देखते नहीं हो कि डोरी टूट गई है, आषाढ़ में घन गरजने पर खाट पर फिसलन हो जायगी ॥३॥

तैलिंग देश के राजा तैलप पर मुंज ने आक्रमण किया, पर गोदावरी के उस पार वह बंदी बना लिया गया। बाद में उसका तैलप की बहिन मृणालवती से प्रेम हो गया, एक दिन मुंज दर्पण में अपना मुंह देख रहा था, पीछे मृणालवती खड़ी थी। मुंज का यौवन और अपनी अधेड़ अवस्था देखकर वह चिंता करने लगी, इस पर मुंज ने उसे ढाढस दिया—

मुंज कहता है, हे मृणालवती ! गत यौवन की चिंता मत कर। शक्कर के सौ खंड भी हो जाय तब भी वह मीठी रहती है ? ॥४॥

[illegible] होती हैं,
[illegible] ॥५॥
[illegible]

अरे, पुत्र स्त्री और कन्या किसके हैं ? और खेती-बाड़ी भी किसकी ? अकेला ही आना है, और हाथ पैर दोनों झाड़कर अकेला ही जाना है ॥ १८ ॥

समुद्रतट पर टहलते हुए सिद्धराज से उसके चारण ने यह कहा—

हे नाथ ? आपको कौन जानता है, आपका चित्त चक्रवर्ती है, हे कर्णपुत्र ? जो शीघ्र लंका को लेने के लिए, मार्ग देख रहा है ॥ १९ ॥

नवघन के मारे जाने पर, उसकी पत्नी का यह कथन है ?

यह राणा अब स्वच्छन्द नहीं है, यह पृथ्वी पर न तो कभी पड़ा रहा है और न पड़ा रहेगा, खंगार के साथ अब मैं अपने प्राणों को आग में क्यों न होम दूँ ॥ २० ॥

सब लोग तो बनिया हैं किन्तु सिद्धराज जयसिंह बहुत बड़ा सेठ है, उसने हमारे गढ़ के नीचे क्या वाणिज्य फैलाया है ॥ २१ ॥

नवघन खंगार के मारे जाने पर यह उक्ति कही गई है—

हे सुन्दर [illegible] तुमने [illegible] खंगार [illegible] किया, [illegible]

[illegible]

[illegible]

नदी की तरह नवघन के बिना तुममें नया प्रवाह नहीं आ सकता ॥ २३ ॥

हे वर्धमान (नगर का नाम) तुम्हारी बढ़ती भुलाए भी नहीं भूलती। हे भोगावह (नदी) तुमसे अब शल्यभाव भोगा जायगा। [क्योंकि अब नवघन नहीं है] ॥ २४ ॥

आ० हेमचंद्र की माता के उत्तरकर्म के अवसर पर उसके विरोधियों ने उनका विमान भंग कर दिया इस पर वह सोचते हैं—

या तो स्वयं समर्थ हो या फिर किसी समर्थ को हाथ में ले। कार्य करने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को दुनिया में तीसरा रास्ता नहीं ॥ २५ ॥

कुमारिके सन्तों की पहनी हुई चोली को तान रही हैं ठीक ही है कि तरुणीजन उनके गुन को पीठ पीछे ग्रहण करती हैं। [यहाँ गुण का अर्थ है डोरा और गुण] ॥ २६ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

उसको भी ऊपर की सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २८ ॥

हे स्वामी ? एक फूल के लिए भी आप सिद्धि का सुख देते हैं, आपके साथ किसकी समानता, हे जिनवर आपका कितना भोलापन है ॥ २९ ॥

कुमारपाल का उत्तराधिकारी अजयपाल बहुत अत्याचारी था, उसने जैन विद्वानों और प्रमुखों को गिन-गिनकर मरवा डाला। सौ ग्रंथों के बनानेवाले पंडित रामचंद्र को उसने गर्म तांबे पर चढ़ा दिया, बेचारा यह दोहा पढ़कर दाँतों से जीभ काटकर मर गया—

सचराचर महीपीठ के सिरपर जिस सूर्य ने अपने पाद (किरण) डाले उस दिनेश्वर का भी अंत हो जाता है। होनहार होकर ही रहती है। [पाद शब्द में श्लेष है] ॥ ३१ ॥

न मारिए न चुराइए परस्त्री गमन का वारण कीजिए। थोड़ा सी थोड़ा दान कीजिए। इस प्रकार शीघ्र स्वर्ग जाइए ॥ ३२ ॥

पहला भाग

[illegible]

वह, रक्तांशुक लपेटे हुए, ममत रूपी प्रियतम से आबद्ध हो ॥६॥

भ्रमर समूह से सहित, मदकार की मंजरी ऐसी जान पड़ती है, मानों मदनानल की ज्वाला से धूआ उठ रहा हो ॥१०॥

राजा नल दमयंती के वस्त्र पर उसे त्यागते समय रक्त से यह लिखा गया था—

वट वृक्ष की दाहिनी दिशा से विदर्भ को रास्ता जाता है और बाईं दिशा से कोसल को। जहां रुचे वहां जाओ ॥११॥

नल एक ही निठुर, निष्कृप और कापुरुष है इसमें भ्रांति नहीं क्योंकि जिसने रात में सोती हुई, महामती दमयंती को अकेला वन में छोड़ दिया ॥१२॥

राजगृह के राजा श्रेणिक के पुत्र अभय को प्रद्योत ने अपने यहां छल से पकड़ कर कैद कर लिया। अभय के प्रशसनीय काम करने पर राजा ने उससे वर मांगने को कहा—उसने एक ऊटपटांग वर मांगा—जिसका अभिप्राय था कि मुझे छोड़ दो—

नलगिरि हाथी पर शिवादेवी (रानी) की गोद में बैठे मुझे अग्निभीरु (Fire Proof) रथ की लकड़ियों की आग मेरे अग्र में दो ॥१३॥

जाते समय अभय बदला लेने को यह प्रतिज्ञा कर गया—

सूर्य को दीपक बनाकर (दिन दहाड़े) नगर के बीच में, हे स्वामी यदि चिल्लाते हुए तुम्हें न हरूं तो मैं आग में प्रवेश करूं ॥१४॥

वेशविशिष्टा का शरण कीजिए, भले ही वे मनोहरगात्र हों। गंगाजल में प्रक्षालित कुतिया क्या पवित्र हो जाती है ॥१५॥

नयनों से रोते हैं और मन में हंसते हैं वेशविशिष्ट वही करते हैं जो करपत्र काठ का करता है ॥१६॥

कवाड़ी, कवाड़ी ही रहा। यह कहती है—

अटवी में पत्ती और नदी में जल था, तो भी तुम्हारा हाथ नहीं हिला [पत्ती और जल से देवता की पूजा नहीं की] अरे ! उस कवाड़ी के आज भी विशीर्ण वस्त्र हैं ॥ २५ ॥

जो परस्त्री से विमुख हैं वे नरसिंह कहे जाते हैं और जो परस्त्रियों से रमण करते हैं उनसे लीग [कुल की] पोछ दी जाती है ॥ २६ ॥

एक बहू पशु पक्षियों की भाषा जानती थी। रात को शृगाल को यह कहते सुनकर कि शव दे दे और गहने ले ले, वह वैसा करने गई, लौटते हुए ससुर ने देख लिया और कुलटा समझकर वह उसे उसके पीहर ले चला, मार्ग में वृक्ष के नीचे एक कौआ बोला—इस पेड़ के नीचे १० लाख की निधि है उसे निकाल ले और मुझे दही सत्तू खिला। इस पर यह कहती है—

मैंने एक दुनय किया, उससे तो घर से निकाली गई, यदि दूसरा दुर्नय करू तो प्रिय से भी न मिल सकूँगी ॥ २७ ॥

हम थोड़े हैं और शत्रु बहुत हैं यह कायर ही सोचते हैं। हे मुग्धे ! देखो, गगनतल को कितने जन प्रकाशित करते हैं ॥ २८ ॥

वही विचक्षण कहा जाता है और वही चतुर शोभना है जो उन्मार्ग में जानेवाले को पथ में लगाता है और जो स्नेही चित्त का है ॥ २९ ॥

ऋद्धिविहीन मनुष्यों का कोई भी सम्मान नहीं करता। पक्षियों द्वारा मुक्त फल रहित श्रेष्ठ वृक्ष इसका प्रमाण है ॥ ३० ॥

यद्यपि मनुष्य मृग सुंदर और विचक्षण भी हो, तो भी लक्ष्मी प्रतिक्षण सेवा नहीं करती। कहते हैं स्त्रियों की बुद्धि पुरुषों के गुण अवगुणों को चित्त से विमुख करती है ॥ ३१ ॥

जो कुलक्रम का उल्लंघन करता है उसका अपयश फैलता

है । शुभ्रबुद्धि को लानेवाले भी, उसे, कोई पंडित नहीं बनाता ॥ ३२ ॥

मूर्ख मनुष्यों का मन जो दुर्लभ वस्तु की इच्छा करता है सो क्या वह शशिमंडल को ग्रहण करने के लिए आकाश में हाथ पसारता है ? ॥ ३३ ॥

देवी राजकन्या का भविष्य कह रही है—

जो सिंह का दमन करके उसपर सवारी करेगा अकेला ही शत्रु को जीतेगा । उसे कुमारी प्रियंकरी देकर, सारा राज अर्पित कर दो ॥ ३४ ॥

सोमप्रभ और सिद्धपाल की रचित कविता

परस्त्रीगमन की निंदा—

[जिसने] कुल कलंकित किया, माहात्म्य मलिन किया, सज्जनों का मुंह काला किया, निजगुणसमूह को हाथ देकर अलग किया, अपयश से जग को ढक दिया, व्यसनों को अपना बनाया, भद्र का [?] से वारण किया, स्वर्ग को भी ढक दिया, उस [?] लोक में [illegible] परदारा की कामना मत करो ॥ १ ॥

[illegible]

पुत्री, यह अनीसहित भल्ली की तरह, हृदय में प्रविष्ट होकर मारती है ॥३॥

ये ही वे घोड़े हैं, यही वह स्थली है, ये ही, वे पैने सड्ग हैं, यहीं पर पौरुष जाना जायगा, जो यदि लगाम को नहीं मोड़ता ॥४॥

भुवन भयंकर, शंकर को तुष्ट करने वाला, रावण, श्रेष्ठरथ पर चढ़कर निकला। मानों विधाता ने चारमुख (ब्रह्मा) और छः मुख (कार्तिकेय) का ध्यान कर और उन्हें एक में लाकर उसकी (रावण की) रचना की हो ॥५॥

हे सखी अगलित स्नेहवालों का जो स्नेह है लाख योजन जाने और सौ वर्षों में भी मिलने पर भी, वह, सौख्य का स्थान है ॥६॥

अंग से अंग नहीं मिले, और न अधर से अधर। प्रिय का मुख कमल जोहती हुई उसका सुरत यों ही समाप्त हो गया ॥७॥

प्रवास पर जाते हुए प्रिय ने मुझे जो दिन (अवधि के) दिए, नख से उन्हें गिनते हुए, मेरी उंगलियां जर्जरित हो गई ॥८॥

सागर तृणों को ऊपर रखता है और रत्नों को तल में। स्वामी सुभृत्य को तो छोड़ देता है और खल का आदर करता है ॥९॥

गुणों से सम्पत्ति नहीं कीर्ति मिलती है, (लोग) लिखित फल ही भोगते हैं। सिंह एक कौड़ा भी नहीं पाता, जब कि हाथी लाखों से खरीदे जाते हैं ॥१०॥

जन वृक्ष से फलों का ग्रहण करता है और कड़वे पल्लव छोड़ देता है [illegible] सज्जन की तरह महाद्रुम उन्हें अंक में धारण करते हैं ॥ ॥

दूर स्थान में [illegible] [illegible] [illegible] अपने [illegible] [illegible]

रुया त्यों कामदेव अपने बाणों को मरेपत्थर पर तीखा करता है ॥ २१ ॥

देखो, सौ सौ युद्धों में, हमारा कांत, अतिमत्त स्वकाकुंश गजों के गंडस्थलों को विदीर्ण करता हुआ, वर्णित किया जाता है ॥ २२ ॥

हे तरुणिओ, मेरा विचार कर अपना घान मन करो ॥ २३ ॥

भागीरथी की तरह भारती भी तीन मार्गों से प्रवर्तित होती है। [भागीरथी स्वर्ग मर्त्य पाताल में, और भारती, वैदर्भी गौड़ी और पांचाली, इन रीतियों में]॥ २४ ॥

सर्वाङ्ग सुन्दर विलासीनियों को देखते हुए ॥ २५ ॥

अपनी मुखकिरणों से मुग्धा, अंधेरे में भी हाथ देख लेती है। सो फिर शशिमंडल की चांदनी में दूर तक कैसे नहीं देखती ॥ २६ ॥

दूती नायक से कह रही है—

हे तुच्छकाय ? उसका [नायिका का] मध्यभाग तुच्छ है उसका बोलना भी तुच्छ (थोड़ा) है, उसकी रोमावली इलकी और अच्छी है, उसकी हसी भी मन्द है, उसकी तुच्छकाय में लावण्य का निवास है प्रियवचन का नहीं पानेवाली उसका जो अन्य भी [illegible] तुच्छ है वह कहने नहीं बनता आश्चर्य है कि उस [illegible] का अन्तर इतना [illegible] है कि [illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]

अपनापन लगाकर जो पथिक पराये में चले गए हैं, वे भी अवश्य सुख से नहीं सोते, जैसे हम वैसे वे ॥५७॥

मैंने समझा था कि प्रिय-विरहिताओं को रात में कुछ आसरा होगा, पर यह चंद्रमा उस प्रकार तपता है जिसप्रकार क्षयकाल में दिनकर ॥५८॥

हे सखी, झूठ मत बोलो, मेरे कंत के दो दोष हैं—एक तो, देते हुए मैं ही बचती हूं, और दूसरे, युद्ध करते हुए करवाल ॥५९॥

यदि परकीय सेना भग्न हुई, तो हे सखी, मेरे प्रिय के द्वारा, और यदि हमारी सेना भग्न हुई, तो उसके मारे जाने पर ही ॥६०॥

उसका मुख और कबरीबंध ऐसे सोहते हैं मानो शशि और राहु मल्लयुद्ध कर रहे हैं। भ्रमर समूह से तुलित उसके कुटिल केश ऐसे सोहते हैं मानो तिमिर के बच्चे मिलकर खेल रहे हैं ॥६१॥

हे पपीहे, पिउ पिउ कहकर और हताश होकर कितना ही रोओ ? पर तुम्हारी जल में और हमारी वल्लभ में, दोनों की आशा पूरी नहीं होगी ॥६२॥

हे पपीहे, बार बार निर्घिण बोलने से क्या, विमल जल से सागर भर गया, फिर भी, एक भी धार नहीं मिली ॥६३॥

इस जन्म में और दूसरे जन्म में भी, हे गौरी ! मुझे ऐसा पति दो जो त्यक्तांकुश मत्तगजों का हंसते हंसते पीछा करता है।

बलि से अभ्यर्थना करने पर वह विष्णु भी छोटे हो गए, यदि बड़प्पन चाहते हो तो किसी से मांगो मत ॥६५॥

चाहे विधि रुठ जाय और चाहे ग्रह पीड़ित करें। हे धन्ये, तुम विषाद मत करो यदि व्यवसाय बढ़ जाय, तो मैं वैश्य की तरह शीघ्र ही सम्पत्ति को काढ़ूंगा ॥६६॥

(अभिसारिका) जब तक दो पैर चलकर प्रेम निबाहती है तब तक चंद्रमा की किरणें फैल गईं। [सर्वाशन, आग का नाम है, उसका शत्रु समुद्र है और समुद्र का पुत्र चंद्रमा। 'अम्मह-यचिउ' एक पद है] ॥७७॥

हे अम्मा, पयोधर वज्र से हैं जो नित्य मेरे उस कांत के सामने खड़े रहते हैं जिससे युद्धक्षेत्र में गजघटा भाग जाती है ॥ ७८ ॥

हृदय में गोरी खटकती है और आकाश में मेघ घुड़क रहे हैं। वर्षा की रात में प्रवासियों के लिए यह विषम संकट है ॥७९॥

उस पुत्र के होने से क्या लाभ और मरने से क्या हानि है, जिसके बाप की भूमि दूसरे के द्वारा चाप ली जाय ॥८०॥

सागर का उतना ही जल है और उतना ही विस्तार है, पर तृषा का निवारण एक पल भी नहीं होता फिर भी यह व्यर्थ गरजता है ॥८१॥

असतियों ने चंद्रग्रहण देखकर उसका उपहास किया—हे राहु, प्रियजनों को विक्षोभ करने वाले उस मयंक को ग्रस लो ॥८२॥

हे अम्मा ? स्वस्थावस्था में सुख से मान की चिंता की जाती है, प्रिय को देखने पर हड़बड़ी से अपनी सुध कौन रख सकता है ॥ ८३ ॥

गणना करके मैंने कहा कि इसी का जन्म अत्यन्त सफल है, जिसका त्याग, वीरता, नय और धर्म व्यर्थ नहीं हुआ ॥८४॥

[illegible] ॥८५॥

[illegible] है ॥ ८६ ॥

[illegible]

परस्पर लड़ते हुए जिनका स्वामी पराजित हो गया, उनके लिए परोसे गए मूँग व्यर्थ हैं। [मूँग परोसना, वीरता के लिए आदर सूचक मुहावरा है] ॥ ६७ ॥

हे ब्रह्मन् वे मनुष्य विरल हैं जो सर्वाङ्गदक्ष होते हैं, जो कुटिल हैं वे वंचक हैं, जो ऋजु हैं वे बैल हैं ॥ ६८ ॥

वे दीर्घ नेत्र और ही हैं, वह भुजयुगल भी और है। धन्या का स्तनभार भी अन्य है और वह मुख कमल भी अन्य है ॥ ६६ ॥

केश कलाप भी अन्य है, प्रायः वह विधाता ही अन्य है जिसने गुणलावण्यनिधि उस नितम्बिनी का निर्माण किया ॥१००॥

प्रायः मुनियों को भी भ्रांति है, वे मनका गिनते रहते हैं और अक्षय, निरामय परमपद में आज भी लौ नहीं लगाते ॥१०१॥

हे सखी उस गोरी के नयनसर प्रायः अश्रुजल से बुझे हुए हैं, इसलिए सम्मुख संप्रेषित होकर भी, वे तिरछी घात करते हैं ॥१०२॥

प्रिय आयगा, मैं रूठूंगी, रूठी हुई मुझे वह मनाएगा, प्रायः इन मनोरथों को दुष्कर दैव कराता है ? ॥१०३॥

विरहानल की ज्वाला से करालित कोई पथिक डूबकर (जल में) स्थित है, अन्यथा शिशिरकाल में शीतल जल से धुआँ कहाँ से उठा ? ॥१०४॥

गोष्ठी में स्थित मेरे कंत के झोपड़े कैसे जल रहे हैं। या तो वह शत्रु के रक्त से या फिर अपने रक्त से उन्हें बुझाएगा, इसमें भ्रांति नहीं ॥१०५॥

प्रिय के साथ नींद कहाँ और प्रिय के परोक्ष में भी नींद कहाँ, मैं दोनों तरह नष्ट हुई, नींद न यों न त्यों ? ॥१०६॥

कंत की जो सिंह से उपमा दी जाती है उससे मेरा मान खंडित होता है क्योंकि सिंह अरक्षित हाथी को मारता है और प्रिय पदरक्षकों समेत मारता है ॥१०७॥

आओ, आते हुए को नहीं रोकती। देखूं कितने पैर देते हो। द्वार में मैं ही तिरछी खड़ी हूँ, फिर भी प्रिय आडम्बर करता है ॥२१६॥

हरि, प्रांगण में नचाए गए। लोग आश्चर्य में पड़ गए। इस समय राधा के पयोधरों को जो रचना है वही होता है ॥२१७॥

यह सर्वांगसलोनी गोरी, कोई नई ही विष की गांठ है, जो मद उसके गले नहीं लगता वह मारा जाता है ॥२१८॥

मैंने कहा तुम जुए को रक्खो, हम अधम बैलों से परेशान हैं, हे धवल, तुम्हारे बिना भार नहीं चढ़ता, इस समय तुम विषण्ण क्यों हो ? ॥२१९॥

एक तो कभी नहीं आता, दूसरा आता है पर शीघ्र चला जाता है। हे मित्र मैंने यही प्रमाणित किया कि निश्चय ही तुम्हारे जैसा दूसरा नहीं ॥२२०॥

जिस तरह सत्पुरुष है, उसी प्रकार सागर हैं, जिस तरह नदी है, उसी प्रकार सुमार्ग हैं, जिस प्रकार पहाड़ है उसी प्रकार ... हैं- हे हृदय क्यों विसूरते हो ॥२२१॥

आ ... कर अपने को तट पर फेंकते हैं, नीप, इस ... का ... हुए घूमते हैं ... ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

ग्रहण कर और तत्त्व का ध्यानकर शिव प्राप्त करते हैं ॥१५७॥

अपना धन देना दुष्कर है तप करना भी नहीं भाता, यों सुख भोगने का मन है पर भोगा नहीं जाता ॥१५८॥

जीतना, त्यागना, समस्त धरती को लेना, तप पालना, बिना शांतिनाथ तीर्थंकर के विश्व में कौन कर सकता है ॥१५६॥

वाराणसी जाकर, अथवा उज्जयिनी जाकर जो मरते हैं वे परमपद पाते हैं, दिव्यान्तर की तो बात ही क्या ॥१६०॥

गंगा जाकर, या शिवतीर्थ जाकर जो मरता है वह यमलोक को जीतकर और स्वर्ग में जाकर क्रीड़ा करता है ॥१६१॥

रवि अस्त होने पर घबड़ाए हुए भौंरे ने, मृणाल के खंड को कंठ मे रख लिया, उसे काटा भी नहीं, मानों [वियोग में] जीवार्गल दिया हो ॥१६२॥

वलयावलि के गिरने के भय से धन्या ऊंची बाँह करके जा रही है, मानों प्रिय के वियोगसमुद्र की थाह खोज रही हो ॥१६३॥

जिनवर का दीर्घनेत्रवाला और सलोना मुख देखकर, मानों गुरुमत्सर से भरकर, नमक, आग में प्रवेश करता है ॥१६४॥

हे सखी ! चम्पककुसुम के बीच में भौंरा बैठा है, मानो स्वर्ण पर स्थित इन्द्रनीलमणि सोहता हो ॥१६५॥

बादल पहाड़ से लग रहे हैं और पथिक यह रटता हुआ जाता है कि जो मेघ गिरि को भी लील लेने का मन रखते हैं वे धन्या पर क्या दया करेंगे ? ॥१६६॥

आँतें पैरों में लग गई हैं और सिर कंधे पर झुक गया है, तो भी हाथ कटार पर हैं मैं कंत की बलि जाती हूं ॥१६७॥

पक्षी सिर पर चढ़कर फल खाते हैं और फिर डालों को मोड़ते भी हैं। तो भी महावृक्ष उनको अपराधी नहीं मानते ॥१६८॥

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
राजभाषा	राष्ट्रभाषा	३	२४
तद्भव	तद्भव	६	१०
नामिमाधु	नमिसाधु	१२	११
—भारत	—भारत में	१७	१४
रि यै	किंधें	२०	१
सो	से	२०	१०
माथा	गाथा	२०	१५
ोरखा तुटउ	दोटउ तुरका	२१	१६
ाहित्य सृष्टि में	साहित्य की सृष्टि	२१	२४
ाति	जंति	२६	४
ाटय	बाटय	२७	६
ाटय रह	बाटय रहय	२७	१६
विमत्त	भविसयत्त	३०	६
[illegible]	ड	३७	८
कं य होता है	य को ज होता है	३८	१
[illegible]	क्ष	३९	२
[illegible]	देश = देस	४०	१४
[illegible]	सम्यज्ञान	४७	१४
[illegible]	इकारान्त	४८	६
[illegible]	वस	[illegible]	[illegible]
‐ध्य पुरुष	मध्यम पुरुष	[illegible]	२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
प्रथम पुरुष	उत्तम पुरुष	५८	१२
सामन रूप	समान रूप	५६	२
सव	सर्व	५६	७
तुम्हारा	तुम्हार	६१	१३
स्वर्ग	दिन	६६	४
खाई	खाइ	६६	६
सउणाइं	सउणाइं	७१	२४
लालित्यत्या···	लालित्या	८७	२
प्रकृत	प्राकृत	८८	३
प्रयुत	प्रयुक्त	८६	१३
आगे	आदि	८६	२०
-में फर्तरि-	-में कई जगह कर्तरि-	६३	१४
पयार	पयारेहि	११७	५
अब्भत्थिमि	अब्भत्थिम्मि	,,	६
णिसमाहि	णिसम्महि	,,	८
सरस	सरसें	,,	,,
वयण	वयणें	,,	८
दुज्जणु	दुज्जणु	११८	११
णिसेंगिण	णिसेंगि	,,	२१
वसणामत्त	वसणामत्त	११६	३
उज्झन	इज्झत	,,	४
गइ	गइ	,	११
सज्जमि	सज्जमि	,	२१
खड	खउ	१२०	७

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
मराइ	भणइ	१४२	१७
घण	घण	१४४	१
मइ	मइं	,,	५
घरेइं	घरेइ	१४६	२
अग्गलिउं	अग्गलउं	,,	१६
वेग्गाला	वेग्गला	१४६	१२
सुधि	सुधि	१६१	६
वणावासु	वणवासु	,,	८
मुअजुयलु	भुअजुयलु	१६२	६
घण	धण	,,	१०
तावि	तोवि	१६५	१३
जाताउं	जाणउं	१६८	८
घर	घर	,,	१३
पहाड़ स्पड	पाषाड़ खंड	१८७	१६
-सूड़ों से—	घोड़ों और हाथियों से	२०१	३